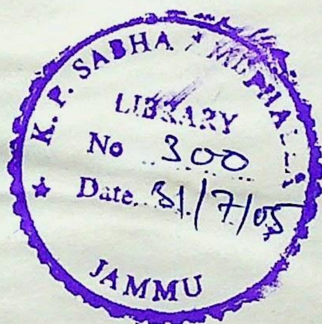
हमारा साहित्य

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू - कश्मीर,
जम्मू





हमारा साहित्य



(१९६६)

सम्पादक

नरेन्द्र खजरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू।



मूल्य ४ रु० ७० पैसे

सेक्रेटरी,
द्वारा, ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित
तथा
एस०सी० हाण्डा ब्रदर्ज़ योगेश प्रेस
जालन्धर में मुद्रित।

हमारा साहित्य

कथा-साहित्य

काव्य-धारा

लेख

नाटक

हमारा साहित्य

आज देश में शिक्षा के माध्यम को लेकर एक तीव्र-विवाद उठ खड़ा हुआ है। इस भाषायी विवाद के तीन कोण हैं—मातृभाषा, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी। इन तीनों भाषाओं का अपना-अपना अधिकार है, अपना-अपना महत्व है तथा तीनों का तदनुरूप स्थान भी होना चाहिए। देश की परतन्त्रता के समय, साम्राज्यवादी शक्तियों ने देश को अपनी परतन्त्रता में बनाए रखने के उद्देश्य से अपनी सुख-सुविधा के अनुसार देश की भाषाओं को उपेक्षा के गढ़े में डालकर अंग्रेज़ी को हमारी शिक्षा-प्रणाली में प्रमुख स्थान दिया था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश के मनीषियों का ध्यान देश की शिक्षा प्रणाली को, देश के व्यापक हित की दृष्टि से नए सांचे में ढालने की दिशा में लगा हुआ है। इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण पग उठाए भी गए हैं, जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा का क्रमिक प्रसार।

शिक्षा को वास्तविक रूप में जनहितकारी तथा विज्ञान की उपलब्धियों को जनता के लिए सुलभ बनाने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि अंग्रेज़ी की कैद से इन दोनों को मुक्त किया जाए। अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है और इस रूप में हमारे हां भी उसका उपयोग होना चाहिए। लेकिन सामान्य जन-शिक्षा में उसका वर्तमान एकाधिपत्य अब असह्य हो उठा है। जो शिक्षा और विज्ञान सामान्य जन-जीवन की उपेक्षा

करके चलते हैं, उन्हें अब और सहन करना देश की उन्नति के मनोरथों को अपने हाथों कुचलने के समान होगा।

देश का जो अत्यन्त अल्प-संख्यक तत्व अंग्रेजी के समर्थन में मुखर है उसके सामने, देश के व्यापक हित के ऊपर, अपनी तथा अपने वर्ग के स्थायी हित की चिन्ता ही प्रमुख है। उस अल्प मत को अब देर तक देश के व्यापक हित के पथ में बाधा नहीं बनने दिया जा सकता।

संसार के समस्त छोटे-बड़े स्वतन्त्र देशों में यदि अपनी भाषाओं को, प्रशासन तथा शिक्षा का माध्यम बनाने से कोई भूचाल नहीं आया, तो अंग्रेजी के स्थान पर इस देश की भाषाओं के प्रयोग से भी कोई विस्फोट नहीं होगा।

अंग्रेज़ी जब इस विवाद से निकल जाएगी तो फिर हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं में विवाद का कोई मौलिक कारण नहीं रहेगा, क्योंकि हिन्दी का यह आग्रह न है, न होना चाहिए कि जनमत की अवहेलना करके वह अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी अंग्रेज़ी का वर्तमान स्थान ले सके। यदि उ वैसा हठ किया तो उसे दोहरे विरोध का सामना करना पड़ेगा। एक विरोध उन विकसित प्रादेशिक भाषाओं की ओर से होगा जो अपने क्षेत्र में अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करने के सर्वथा योग्य हैं जिनमें आर्यकुल की भाषाएं भी हैं, जैसे: बंगला; आसामी, उड़िया, मराठी, गुजराती तथा पंजाबी आदि और आर्येतर कुल की दक्षिण भारतीय भाषाएं भी हैं, जैसे: तामिल, तेलगू मलयालम आदि। दूसरा विरोध होने की सम्भावना उन भाषाओं से भी है जो आज तक अपने आपको हिन्दी का ही प्र. शिक रूप मानकर मौन रही हैं। जैसे—व्रज, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी आदि।

हिन्दी अपने वर्तमान खड़ी बोली के रूप में, अपने उन प्रादेशिक रूपों को जैसे भुला ही चुकी है। वह जैसे इस तथ्य को भी भूलने लगी है कि उसके अपने जीवन के प्रारम्भिक तीन युगों का कहानी वस्तुत: इन्हीं प्रादेशिक भाषाओं की कहानी है जिसे

उसने अपनी कहानी माना है। आज फिर, हिन्दी को अपने इन प्रादेशिक रूपों के प्रति पुन: उसी उदारता और सौहार्द से काम लेने की आवश्यकता है। हिन्दी के इन प्रादेशिक रूपों के बोलने वालों की संख्या सामान्य नहीं है। इनकी उपेक्षा करने का सीधा अर्थ होगा एक नई साम्राज्यवादी अनुदारता का उदय और इस जनयुग में इस अनुदारता को अपने ही परिवार के अंगभूत तत्व भी सहन नहीं करेंगे। वे प्रादेशिक भाषाएं मातृभाषाओं के रूप में अपने-अपने क्षेत्र में विकसित हों, इसी तथ्य में हिन्दी को गौरव करना चाहिए।

हिन्दी अपने वर्तमान रूप में कई प्रदेशों में मातृभाषा भी हैं। वहां उसका आधिपत्य अक्षुण्ण होगा ही। अन्यत्र वह देश की साझी सम्पर्क भाषा के रूप में विकसित हो रही है, उस से उसे कभी हटाया नहीं जा सकता। उसी रूप में हमारी शिक्षा-योजना में उसका, सर्वदेशीय सम्पर्क-तत्व के रूप में उपयोग होना चाहिए ताकि हम बंगाली, मद्रासी, गुजराती, पंजाबी आदि होते हुए भारतीय भी हो सकें। भारतीयता की तरह ही हमारी एक साझी भाषा भी हो। उस गौरव की एक मात्र अधिकारिणी हिन्दी ही होगी।

प्रस्तुत संकलन

सन् १९६६ का हमारा यह प्रस्तुत वार्षिक संकलन, हिन्दी के उसी सांझे सर्वदेशीय सम्पर्क रूप की एक नन्ही सी कड़ी है, जिसके माध्यम से हमारी यह धरती समस्त देश के सांस्कृतिक जीवन का एक अभिन्न अंग होने की अपनी ईहा प्रकट करती है।

इस संकलन में हम कहानियां, गीत, कविताएं, लेख तथा एकांकी प्रस्तुत कर रहे हैं, हमें आशा है कि इन रचनाओं के

माध्यम से पाठक, इस धरती के चिन्तन की एक झलक प्राप्त कर सकेंगे। इस संकलन के लेखों में आपको जम्मू तथा कश्मीर दोनों प्रान्तों के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक साधना के सम्बन्ध में रुचिकर तथा ज्ञानवर्धक सामग्री पढ़ने को मिलेगी। संस्कृत-साहित्य जगत में अजर-अमर कीर्ति के स्वामी, सरस्वती के वरद पुत्र, कविकुलगुरु कालिदास की साधना का अभिनन्दन करने वाली डा० कर्णसिंह की भावाञ्जलि में सहृदय पाठक अपनी श्रद्धा की छाया भी झलकती देख सकेंगे।

नरेन्द्र खजूरिया

कथा-साहित्य

× वेद राही

× हरिकृष्ण कौल

× ठाकुर पुंछी

× पुष्करनाथ

× घनश्याम सेठी

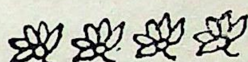
× भगवत्प्रसाद साठे

× चंचल शर्मा

× नरेन्द्र खजूरिया

बर्फ

वेद राही



जब उसकी आंख खुली तो उसका मुंह रजाई के अन्दर था। उसका जी चाहा कि वह वैसे ही पड़ी रहे। लगता था रजाई के अन्दर केवल अंधेरा है, वह नहीं। धीरे-धीरे उसे अपने सदेह होने का ख्याल आने लगा। उसने अपने हाथों को हिलाया और जांघों के बीच दबा लिया।

सर्दी काफी है, उसने सोचा। आप-ही-आप उसका एक हाथ पीठ के पीछे चला गया। वहां न कांगड़ी थी, न कांगड़ी की गर्मी। वह चौंकी। उसे याद आया, वह घर में नहीं है। धीरे-धीरे उसने रजाई सरकाना शुरू किया। मुंह बाहर निकाल कर देखा, क्लब का कमरा था। रोशनी से ज्यादा अंधेरा था, अभी कमरे में सामने, जहां उस की नजर गयी, दीवार पर एक बड़ी-सी पेंटिंग लगी हुई थी। हल्की रोशनी में उसके सारे रंग गडमड नजर आ रहे थे। नीचे दीवार के साथ ही सोफा दिखायी दे रहा था। बड़ी तिपाई पर तीन खाली गिलास। वहीं नीचे फर्श पर ह्विस्की की बोतल, जिसमें कुछ ह्विस्की बची हुई थी और आठ-दस सोडे की बोतलें कुछ खाली, कुछ भरी हुईं।

उसे सर उठाकर देखना पड़ा, सोफे पर सचमुच कोई न था। क्या वह अकेली ही रह गयी है। वह उठना चाहती थी, पर उठ न सकी। उसने फिर माथे तक रजाई को खींच लिया। उसे लगा कि रजाई की उस गन्ध की वह अभ्यस्त नहीं है। वह गन्ध जैसे तेज होती चली गई और आखिर रजाई को घुटनों पर फेंक कर उसे बैठ जाना पड़ा। सर्दी की लहर ने झकझोर-सा दिया। दायें से बायें अपना स्वेटर खोजने लगी वह। ठीक अपने ही नीचे पड़ा हुआ मिला। स्वेटर पहनकर वह बिस्तर से उठ खड़ी हुई। शाल नीचे गिर गया था, उसने झुक कर उठा लिया।

बुखारी बिल्कुल ठण्डी थी। दो आधी जली हुई लकड़ियां बाहर ढेर हुई पड़ी थीं। उसे, रात को बुखारी से गर्म हुए कमरे की याद आयी। रजाई के भीतर वैसी ही गर्मी नहीं होती। खिड़की का एक शीशा तोड़ कर बुखारी की चिमनी का सिरा बाहर निकाला गया था। वह उस खिड़की के पास आ खड़ी हुई। खिड़की के शीशे बिल्कुल धुंधलाये हुए थे। एक शीशे पर उसने हल्के-से हाथ फेरा। सर्दी की चुभती हुई लहर पूरे बदन में सरसरा गयी।

शीशे में से देखा, बाहर काफी बर्फ पड़ चुकी थी। रुण्ड-मुण्ड दरख्तों की शाखों पर जमी हुई बर्फ की परतें, लगता था, मजबूरी से, बिना किसी उद्देश्य के आरोपित की गयी हैं। बायीं ओर झील का एक कोना नजर आ रहा था, वहां खड़े हाउसबोटों पर भी बर्फ लद गयी थी। क्लब के आंगन की फूलों की क्यारियां भी बर्फ में ढक गयी थीं। खिड़की के शेड से बर्फ की कई जालियां लटक रही थीं। उनमें से बूंद-बूंद पानी चू रहा था। चिमनी के मुंह से बर्फ का एक लम्बा सांप, लगता था, बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था।

जीप स्टार्ट होने की आवाज आयी तो वह चौंक गयी। दूसरी खिड़की के पास आकर, उसने एक शीशे को हाथ से साफ करके देखा, क्लब के अहाते में अकेली जीप खड़ी थी। उसकी छत और अगले हिस्से पर भी बर्फ के तोदे जमे हुए थे। जीप के भीतर गोपीनाथ ही होगा, उसने सोचा। जीप की फड़फड़ाहट का शोर काफी ऊंचा था, जो इस चौतरफा बन्द कमरे में गूंज रहा था।

खिड़की से हटकर वह फिर बेड के करीब आयी और जूतें पहन कर बाथ रूम में चली गयी। चमकता हुआ बाथरूम अच्छा लगा। ऐसा बाथ रूम उसने पहले कभी नहीं देखा था। जी चाहा, गर्म पानी हो तो वह अभी इस पत्थर से बने बड़े-से सफेद टब में नहा ले। दो- तीन नये तहाये तौलिये भी एक ओर रखे हुए थे। कुल्ला करने के लिए उसने वाशबेसिन का नल खोला। गर्म पानी आ रहा था। उत्साहित हो कर उसने टब का नल खोल दिया। गर्म पानी से निकलती हुई भाप की ओर वह देर तक देखती रही।

आध घण्टे के बाद वह बाथ रूम से बाहर निकली, तो सामने सोफे पर गोपीनाथ को बैठे देख कर ठिठक गयी। वह अखबार पढ़ रहा था। उसका चेहरा अखबार के बीच छुपा हुआ था। बाथरूम का दरवाजा खुलने की आवाज सुनकर भी उसने सर उठा कर नहीं देखा।

एक पांव बाथरूम के भीतर और एक बाहर रखे वह उस अखबार की ओर देखती रही, जिस के बीच गोपीनाथ का चेहरा छिपा था। उसका काला पैण्ट नजर आ रहा था। तिपाई पर गिलास उठा लिये गये थे। नीचे पड़ी ह्विस्की

और सोडे की बोतलें गायब थीं। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि पांव उठाये तो कैसे! क्षण भर के लिए उसे लगा कि वह भूल से बिना कपड़े डाले ही बाथरूम से बाहर निकल आयी है, और सामने कोई बेगाना व्यक्ति बैठा हैं। अब मुड़ भी नहीं सकती।

तभी दरवाजा खुला और ब्वाय चाय की ट्रे लिये अन्दर आया। गोपीनाथ ने अखबार में से मुंह निकाल कर ब्वाय की ओर देखा। बाथरूम में अटका हुआ एक पांव उसने भी उठाया और बिस्तर की ओर बढ़ी।

ब्वाय तिपाई पर ट्रे रख कर वापस चला गया।

"चाय पीकर चलते हैं," गोपीनाथ बोला। अखबार को घुटनों में दबा कर वह चाय की केतली में चम्मच फिराने लगा था।

सरहाने के नीचे से हेयरपिन निकाल कर वह बालों में खोंसने लगी। अब तक उसने ठीक से गोपीनाथ की ओर नहीं देखा था। इस समय उसकी शक्ल भी याद नहीं थी उसे। हेयरपिन खोंस लेने के बाद यों अलग खड़े रहना व्यर्थ था। वह सोफ़े की ओर बढ़ी।

"मैं जीप गर्म करके आया हूं। सर्दी में इंजन बिल्कुल जम चुका था। बाहर बहुत ठण्ड है।"

चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ाते हुए गोपीनाथ ने उसे पहली बार देखा, 'तुम नहा के आयी हो क्या ?" वह सचमुच हैरान हुआ।

"हां।"

"क्या जरूरत पड़ी थी।"

"क्या पानी था," उसने चाय का एक घूंट हलक से नीचे उतारा। पेट के नीचे तक जाती हुई एक गर्म लहर ने जैसे बहुत कुछ पिघला दिया।

"मैं भी जल्दी जाग गया था। तुम रजाई में दुबकी पड़ी थी उस वक्त। साथ के कमरे में भी गया था, शाद साहब सोया पड़ा है," कहते हुए गोपीनाथ ने दो ही घूंट में आधा प्याला खाली कर दिया।

उसने जैसे पहली बार गोपीनाथ को देखा। शक्ल याद आ गयी। वही अन्दर को धंसी आंखें, तोते के समान लम्बी नाक, जो सर्दी से बिल्कुल लाल हो चुकी थी। उसके सर पर बाल बहुत कम थे। वे भी भूरे थे। उसकी शर्ट काफी मैली हो चुकी थी। दायां कालर आधा अन्दर को मुड़ गया था।

"रात मैंने कुछ ज्यादा ही पी ली। एकदम नींद आ गयी मुझे। तुम भी सो गयी अच्छा किया," कह कर गोपीनाथ ने दुबारा प्याला भरना शुरू कर दिया।

उसे गोपीनाथ का रात का चेहरा याद आ गया। बहुत जल्दी-जल्दी पी रहा था वह। शाद साहब ने उसका गिलास खाली ही नहीं रहने दिया। अन्त में उसकी आंखें बिल्कुल छोटी हो गयी थीं। उसका चेहरा भीख मांगते हाथ-सा लगने लगा था। बात करते करते वह आचानक चुप हो गया। उसने देखा तो उसकी आंखें बिल्कुल बन्द हो चुकी थीं। क्षण भर में ही वह गहरी नींद में डूब गया था।

वह घबरा गयी थी। उसे ग्लानिका अनुभव भी हुआ था। शाद साहब की तरफ देखना मुश्किल हो गया था। वह क्या सोचता होगा कि यह इस बेहोश हो चुके व्यक्ति की बीबी है!

"चलो," गोपीनाथ ने चाय का दूसरा प्याला भी खाली कर दिया और उठा।

वह भी उठी। एक बार उसने अपने कपड़ों पर नजर डाली। सलवार काफी कुचली हुई थी। शर्ट कुछ ठीक थी। स्वेटर के कन्धे को ठीक करके उसने शाल को एक बार फैला कर फिर ओढ़ा। कान भी अच्छी तरह ढक लिए और गोपी नाथ के पीछे कमरे से वाहर निकल आयी। साथ वाले कमरे के आगे से गुजरते हुए उसके जिस्म में एक सनसनाहट सी व्याप गयी।

"कितना मजा आता है कभी कभी ऐसी पिकनिक करने में!" गोपीनाथ ने जीप को मोड़ते हुए कहा।

जीप कीचड़ और बर्फ से भरे अहाते से वाहर आ गयी।

"हम लोग जिन्दगी का लुत्फ लेना नहीं चाहते, जिन्दगी में खाना पीना और ऐश करनी चाहिए।"

मैली-मैली सी सुबह थी। लगता था, रोशनी में कीचड़ घुला हुआ है। हर तरफ पड़ी हुई बर्फ भी रोशनी को सफेद नहीं बना पा रही थी। जीप के पहिये बर्फ पर दोतरफा ट्रैक बनाते हुए चले जा रहे थे। अगले पहियों को काफी मुश्किल पड़ रही थी। एका-एक रोशनी कुछ और मैली हो गयी।

"लगता है, अभी बर्फ पड़ने लगेगी," गोपीनाथ बोला।

जूतों में उसके नंगे पांव सुन्न हो रहे थे। उंगलियों की पोरों में टीसें उठने लगी थीं। पांव हिलाने की चेष्टा कर रही थी, पर वे हिल नहीं पा रहे थे।

गोपीनाथ वातों के पहले क्रम पर आ गया, "मैं और शाद साहब तो इस क्लब में आते ही रहते हैं। हर शाम यहीं बीतती है। मैं हमेशा सोचता था, कभी तुम्हें लेकर यहां आऊंगा। कल तुम कितनी खुश थी, शिकारे में बैठ कर!"

सचमुच वह कल वहुत खुश थी। शिकारे में बैठ कर पहले कभी उसने

खाना नहीं खाया था। खाने के लिए भी कल क्या क्या था! पाइनएपल जूस न जाने वह कितने डिब्बे पी गयी थी। संतरे भी खाती ही चली गयी थी। ठण्ड लगने लगी थी। तब उसने स्वयं शिकारा चलाना शुरू किया था। देर तक चप्पू चलाती रही थी, तब कुछ गर्मी आयी थी। गोपीनाथ ने कहा था, "अभी क्लब में जा कर थोड़ी ब्रांडी ले लेना, नहीं तो सर्दी लग जायेगी।"

"बारिश होने लगी है," कहते हुए गोपीनाथ ने वाईपर चला दिया।

उसने देखा, हां, बारिश होने लगी थी। पहले वह खुली आंखों भी देख नहीं रही थी। शीशे को साफ करते हुए वाईपर का चलना उसे दिलचस्प लगा। वह उस की गति का नपातुला अन्दाज देखती रही। देखते-देखते बारिश के कतरे नन्ही-नन्ही फुहियों में बदल गये।

"बर्फ पड़ने लगी है," गोपीनाथ बोला।

उसने देखा, हां, वाईपर बर्फ की फुहियां साफ कर रहा था। फुहियां गालों में बदलती जा रही थीं। गाले बड़े होते जा रहे थे। जीप के शोर के बावजूद उसे एक बेरहम सन्नाटे की जकड़न महसूस होने लगी थी। सर्दी भी लग रही थी। अपने दोनों हाथ उसने शाल के भीतर समेट लिये थे। नाक में से पानी वह निकला था। एक कतरा नाक की नोक पर आकर लटक गया था, जिसे पोंछने के लिए वह हाथ नहीं उठा पा रही थी।

गोपीनाथ को जीप चलाने में कठिनाई होने लगी थी। पहिये फिसल कर बे· काबू होते जा रहे थे। और स्टियरिंग को बड़ी दक्षता से सम्भालना पड़ रहा था। जंगल से निकल कर जीप झील डल के किनारे खुली सड़क पर आ गयी तो गोपी नाथ ने एकाएक जीप को रोक दिया। बाहर निकल कर उसने जीप के अगले भाग पर बर्फ के जमे ढेर को नीचे गिरा दिया। हाथ से शीशा भी साफ किया। और फिर जल्दी से भीतर आकर सर, मुंह और कन्धों पर से बर्फ झाड़ने लगा।

"तुम कुछ बोल नहीं रही," वह बोला।

वह फिर भी कुछ नहीं बोली। शीशे पर पड़ते हुए बर्फ के गालों को देखती रही। उसे लगा कि शाल में वह नहीं, कोई और औरत बैठी है।

गोपीनाथ ने छोड़ी हुई बात का सिरा फिर से पकड़ा, "कल तुम शिकारे में कितनी खुश नजर आ रही थी। दरअसल मैं पुराने विचारों का आदमी नहीं हूं। मैं तुम्हें खुश देखना चाहता हूं। मैं खुद एक बड़ा आदमी बनना चाहता हूं। कुछ ही दिनों में मेरे दिल्ली ट्रान्सफर का आर्डर जरूर हो जायेगा। देखना हम उस बड़े शहर में कितने ठाठ से रहते हैं।"

गोपी नाथ ने फिर जीप स्टार्ट कर दी।

उसे शाद साहब की आंखें याद आने लगती हैं। गोपीनाथ के सोफे पर लुढ़क जाने के बाद शाद साहब ने जिन आंखों से उसकी ओर देखा था, एक बार तो वह घबरा ही गयी थी। उसके हाथों में शुरू से ही ह्विस्की का एक गिलास भर कर दे दिया गया था, यह कह कर कि सर्दी बहुत है। उस समय तक केवल आधा गिलास ही पिया था उसने।

"गोपीनाथ मेरा बड़ा प्यारा दोस्त है," शाद साहब ने बेहोश पड़े गोपी नाथ की ओर देखते हुए कहा था। फिर उसकी तरफ मुंह करके बोला, "मेरे और इसके बीच कोई फर्क नहीं है।"

शराब का आधा गिलास पी चुकने के बाद भी उसे कोई नशा नहीं हुआ था। वह चाहती थी, शेष बचा हुआ आधा गिलास वह न पिये। पेट गड़बड़ा चुका था। आंतों को जैसे भीतर-ही-भीतर किसी ने काटना शुरू कर दिया था।

"यह गिलास खाली कर दो और तुम भी सो जाओ," शाद साहब ने कहा, "इस वक्त हम में से कोई भी श्रीनगर न जा सकेगा। बाहर शायद बर्फ भी बढ़ रही है।"

उसे किसी तरह एक ही बार में अपना गिलास खाली कर देना पड़ा। खाली गिलास टेबुलपर रखकर शाल से उसने मुंह साफ कर दिया। मुंह पोंछते हुए उसने कनखियों से शाद साहब की तरफ देखा, कहीं वह देख तो नहीं रहा। उसे विश्वास था, वह उसी की तरफ देख रहा है, पर उसे पता नहीं चला वह देख रहा था या नहीं।

"जाओ तुम उस बेड पर सो जाओ।"

वह उठी और बेड पर जाकर बैठ गयी थी। शाद साहब ने उठ कर बत्ती बुझा दी। बत्ती बुझाने से पहले उसने अपने और उसके बीच के फासले को नाप लिया था।

झील पर बर्फ के गिरने का दृष्य भयावह और भव्य था। सन्नाटेकी जकड़न बेहद तेज हो गयी थी। जीप बर्फ में ट्रैक बनाती चली जा रही थी। पहिये फिसलते, संभलते फिर फिसलते फिर संभलते। घर्र र र र घर्र र र र की आवाज के अतिरिक्त कभी-कभी किसी रुण्ड मुण्ड पेड़ के ऊपर से बर्फ की पर्तें गिरने की आवाज भी आ जाती थी।

गालों का आकार फिर छोटा होने लगा। झील का दृष्य कुछ-कुछ साफ होता जा रहा था। फिर गाले गिरना बिल्कुल बन्द हो गये।

मीलों तक फैली हुई बर्फ उसके भीतर जमती जा रही थी। शिराओं में खून ठण्डा होता जा रहा था, चेहरे की सफेदी नीलेपन में बदल रही थी।

चश्मा शाही के तिराहे पर कुछ लड़के 'शीन-जंग' खेल रहे थे। खूब जोर-शोर से वे दो टोलियों में बंटे हुए, एक दूसरे पर बर्फ के गोले फेंक रहे थे। उसे याद आया, बचपन में वह भी इसी तरह 'शीन-जंग' खेला करती थी। मुहल्ले के सभी बच्चे एक-दूसरे पर बर्फ के गोले बना-बना कर फेंका करते थे। कितना मजा आता था। कपड़े भीग जाते थे। सर ठण्डा और मुंह टमाटर के सामान सुर्ख हो जाया करता था। एक बार न जाने क्या बात हो गयी कि सब बच्चे एक तरफ हो गये और वह अकेली एक तरफ रह गयी थी। सभी ने उसे बर्फ के गोलों से मारना शुरू कर दिया। उसने भी मुकाबला करना चाहा, पर चारों तरफ से उस पर इतने गोले आये, इतने कि उसकी आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। उसे लगा कि उसका दम घुट जायेगा। उसे भागने की भी कोई राह न मिली। जिस तरफ जाती, सनसनाता हुआ बर्फ का गोला छपाक से आ लगता, वह घबरा गयी। उसकी सांस रुकने लगी। तब वह चीख पड़ी, जोर से चिल्लाने लगी—बहुत जोर से।

"तुम कुछ बोल नहीं रहीं?" गोपीनाथ ने पूछा।

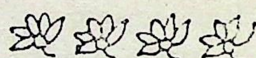
वह फिर भी कुछ नहीं बोली।

जीप चली जा रही थी।



नायक

हरिकृष्ण कौल



मैं आराम से कुर्सी पर बैठ गया। अभी हाल पूरा भरा नहीं था। मेरी पंक्ति में अधिकांश कुर्सियाँ खाली पड़ी थीं। दायें-बायें भी कोई नहीं बैठा था। न जाने हम लोग कब समय की पाबन्दी का महत्त्व समझेंगे—मैं सोचने लगा—पढ़े लिखे लोगों का यह हाल है, साधारण जनता की तो बात ही नहीं। भगवान जाने, मेरी साथ वाली कुर्सियों पर कौन लोग बैठेंगे। खैर, जो भी बैठेंगे, मुझ जैसे पढ़े-लिखे भद्र-पुरुष ही होंगे। महिलाएँ भी हो सकती हैं।

सहसा मेरी दृष्टि अगली पंक्ति पर पड़ी। मेरे ठीक सामने मेरा चपरासी बैठा था। यह क्या बदतमीजी है!—मुझे प्रबन्धकों पर क्रोध आया। यदि वहाँ मिनिस्टर या डाइरेक्टर का चपरासी होता, तो कोई बात नहीं थी। मैं अनुरोध करके उसे अपनी बगल वाली सीट पर बिठाता। शायद उसे सिगरेट भी पेश करता। मगर वह मेरा अपना चपरासी था। आखिर उसे वहाँ बैठने की हिम्मत कैसे हुई? सम्भव है उसने मुझे नहीं देखा होगा। इतना निश्चित है कि ज्योंही वह पलट कर मुझे देखेगा फौरन हाल से बाहर चला जाएगा। उसे जाना ही चाहिए।

समय बिताने के लिए मैं किताब खोल कर पढ़ने लगा। प्रबन्धकों के प्रति मेरा क्रोध उचित ही था। अगर उन्होंने नाटक देखने के लिए मुझे आमन्त्रित किया था तो मेरे चपरासी का वहां क्या काम था? घोड़े और गधे को एक ही लाठी से हांकने की शरारत, शरारत नहीं साज़िश कहां तक क्षम्य थी? और फिर उस आदमी की समझ में यह नाटक कैसे आ सकता है। भरत मुनि, भास, कालिदास, प्रसाद, सेठ गोविन्द

दास, और शेक्सपियर का नाम उस ने कहाँ सुना होगा ? एक प्रोफेसर का ज्ञान कितना विस्तृत होता है !—मैं किताब बन्द कर के सोचने लगा। दूसरे लोग अशिक्षित और अज्ञानी ही नहीं, प्राय: असभ्य होते हैं। हाल में बैठे रहने के बावजूद भी बहुत से लोग सिगरेट पर सिगरेट फूंके जा रहे थे। जबकि मैं केवल पान चबा रहा था। सिनेमा हाल तथा थियटर में सिगरेट न पीने का नियम हम ने ही बनाया है। यदि हम इस का पालन न करेंगे तो कौन करेगा ? वास्तव में सामाजिक नियमों के पालन से ही आदमी को शान्ति, सुरक्षा और सफलता मिलती है। मैं इस बात को समझता हूँ पर अधिकांश लोग नहीं समझते हैं। मेरी सूझ-बूझ बहुत हद तक मेरे पेशे की देन है। मेरा पेशा सचमुच सम्भ्रांत है। ए नोबुल प्रोफेशन ..

शटाप्......! मेरे चपरासी ने मेरे बायें गाल पर ज़ोर से थप्पड़ मारा। मेरी नेक-टाइ अभी तक उस की मुट्ठी में थी। अपनी तीव्र बुद्धि के कारण मुझे मामला समझने में ज्यादा देर नहीं लगी। मैं चपरासी के कंधे पर सिर रख कर सो गया था। या शायद मुझे केवल एक झपकी आ गई थी। जो भी हो, मेरे मुँह से लार टपकी थी जिस से चपरासी का सारा कोट भीग गया था। मेरा सब से बड़ा दुर्भाग्य यही है कि सोते समय मेरे मुँह से लार टपकती रहती है। इसीलिए मैं कभी भी अपने कमरे को छोड़ कर और कहीं नहीं सोता। अपने कमरे में सुबह सबेरे मैं नौकर और बीवी की नजर पड़ने से पहले ही लार से तर चादर और तकियों के गिलाफ बदलता हूँ।

चपरासी ने मुझे पहचाना नहीं था। अन्यथा वह मुझे थप्पड़ मारने का साहस कैसे करता ? चलो यह भी ठीक ही हुआ। यदि उस ने मुझे पहचाना होता तो मुमकिन है वह बदतमीजी नहीं करता। मगर उस के मन में मेरे लिए कोई आदर नहीं रहता। वह भविष्य में मेरा कोई भी हुकुम नहीं मानता। यह बात मेरे लिए थप्पड़ से अधिक पीड़ा जनक होती। कभी कभी ऐसा भी होता है कि जिस बात को हम बुरी समझते हैं, वह वास्तव में उतनी बुरी नहीं होती है। वह मामूली सी बुरी बात किसी बहुत बड़े अनिष्ट से हमारी रक्षा करती है। मैं इस सत्य को भली भांति समझता हूं। अन्य लोग नहीं समझते हैं, सम्भवता इसीलिए दु:ख उठाते हैं।

किन्तु इतने सारे लोगों के सामने मेरा अपमान हुआ था। मैंने चपरासी का हाथ झिड़क कर अपनी टाइ छुड़ा ली। उस छोटे आदमी के मुँह लगने से कोई लाभ नहीं—यह सोच कर मैंने प्रबन्धकों से मांग की कि इस बेहूदा आदमी को उसी क्षण हाल से बाहर निकाला जाए। मैंने लार टपका कर उस के कोट

गौला कर दिया है—इस आरोप का खंडन मैंने जोरदार शब्दों में किया। मैं Spirituality through theatre जैसे गम्भीर विषय पर पुस्तक पढ़ रहा था। अतः मेरे सो जाने या झपकी लेने का प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रबन्धकों पर मेरी बातों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा और उन में से एक व्यक्ति मेरी ओर आने लगा। मैंने किताब खोल कर उसे दिखानी चाही। लेकिन तभी रुक गया। पुस्तक के स्थान पर इस समय मेरे हाथ में एक अलबम था जिसमें विभिन्न फिलम अभिनेत्रियों के फोटो थे। कुछ अभिनेत्रियां साड़ी में थीं, कुछ कमीज और चूड़ीदार में, कुछ स्लैक्स में, कुछ वैदिंग सूट में और कुछ बिल्कुल नंगी थीं। निःसंदेह मेरे साथ साज़िश की गई थी। मेरे हाथ में ऐसी पुस्तक रखी गई थी जिस में नंगी औरतों की तस्वीरें थीं। मेरी सब से बड़ी कमजोरी यह है कि मैं किसी भी स्त्री अथवा पुरुष को नंगा होते नहीं देख सकता। अब क्या होगा? आदमी मेरे बारे में क्या सोचेगा? मैं परेशान हो गया। लेकिन उस आदमी ने पास आकर मुझ से या मेरे चपरासी से कोई पूछ-ताछ नहीं की। न उस ने मुझ से पुस्तक दिखाने को कहा। वह बड़ी बेतक्कलुफी से मेरी बगल वाली कुर्सी पर बैठ कर सिगरेट के लम्बे कश लेने लगा। उसने एक सिगरेट मेरी ओर भी बढ़ाई। लेकिन मैंने नहीं ली। सिगरेट पी चुकने के बाद उसने मेरे हाथ से पुस्तक ली तथा निहायत ही बेबाक और निर्लज्ज दृष्टि से एक अभिनेत्री के नंगे चित्र को घूरने लगा। मैंने नफरत से मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

नाटक शुरू हुआ। पर्दा उठा और मैंने देखा मंच पर बहुत से अभिनेता कुर्सियों पर बैठे हैं और हमारी ओर ही देख रहे हैं। मेरे सिर के पास ही फ्लॅड-लाइट थी जिस की रोशनी मंच पर पड़ रही थी। हाल की रोशनियाँ बुझा दी गई थीं। मैं बड़ी तन्मयता से नाटक देखने लगा। लेकिन दूसरे लोग अभी तक बकवास करने में लगे थे। उन्हें शायद मालूम भी न था कि नाटक शुरू हो गया है। हाल के एक अन्धेरे कोने में कुछ बच्चे आपस में लुका-छिपी खेल रहे थे। मुझे इस में भी प्रबन्धकों का ही दोष नजर आया। खेल शुरू करने से पहले उन्हें तीन बार घण्टी बजानी चाहिए थी। जैसा कि पुराने नाटकों में होता था। यदि ऐसा किया गया होता तो दूसरे लोग भी इस समय मेरी ही तरह खेल देखने में मशगूल होते। मगर उनमें इतनी सी बुद्धि भी नहीं थी। वास्तव में यह दुनिया ही मूर्खों से भरी पड़ी है। मैं किस किस को समझाऊं। किस किस से लड़ूं।

तभी हाल की पिछली दीवार का दरवाज़ा ज़ोर से पीटने की आवाज आई। लेकिन दर्शकों का ध्यान इस ओर भी नहीं गया। वे अभी तक अपने बकवास में व्यस्त और मस्त थे। मैं समझ गया कि दरवाजा क्यों पीटा जा रहा है। चन्द्रवदन मेहता, आद्य रंगाचार्य आदि के नाटकों में कोई अभिनेता इसी प्रकार हाल में पिछले दरवाजे से आता है और फिर दर्शकों के बीच से गुजर कर मंच पर हो रहे अभिनय में शामिल हो जाता है। (है यहां कोई जिसने चन्द्रवदन मेहता और आद्य रंगाचार्य का नाम सुना हो ?) मैं उठकर दरवाजे के पास चला गया। लेकिन मेरा चपरासी मुझ से पहले ही वहां पहुँच गया था। उसने ही किवाड़ खोल कर अभिनेता को हाल में दाखिल होने दिया और मैं देखता रहा। उसने इस बार शायद मुझे पहचान लिया था। तभी उसने मुझे दरवाजा खोलने का कष्ट नहीं करने दिया। यदि सच पूछा जाए तो मुझे स्वयं दरवाज़ा खोलने के लिए उठना नहीं चाहिए था। मेरी सामाजिक स्थिति का यही तकाज़ा था कि गम्भीरतापूर्वक बैठा रहूँ और हाथ के इशारे से चपरासी को दरवाजा खोलने का आदेश दूं।

अभिनेता दर्शकों के मध्य से गुजर कर मंच पर चढ़ चुका था। वही नाटक का नायक था। किन्तु उस में नायकोचित कोई गुण नहीं था। शक्ल में कोई विशेष अन्तर नहीं था। यदि वह हाल के पिछले दरवाजे से प्रविष्ट होकर मंच पर नहीं चढ़ा होता तो मुझे पता भी नहीं चलता कि वही नायक है।

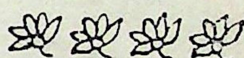
हाल में बैठे लोग अब भी आपस में गप्पें लड़ा रहे थे। एक वृद्ध आदमी किसी युवक की गोद में बैठा भजन गा रहा था। मंच के ठीक सामने जहां खासी रोशनी थी। एक नाई एक खूबसूरत लड़की के बाल तराश रहा था। हाल के अन्धेरे कोने मे बच्चे अब भी लुका-छिपी खेल रहे थे। शायद मैं ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति था जो ध्यानपूर्वक नाटक देख रहा था। तभी मेरा चपरासी तीन चार मोटी मोटी पुस्तकें लेकर मेरे पास आया। मुझे याद आया कि मैं वास्तव में नाटक देखने नहीं, वरन् इस नाटक की समीक्षा लिखने के लिए यहां आया हूं। मैंने चपरासी से पुस्तकें लीं और उन के पन्ने पलटने लगा। मुझे मालूम था कि मैंने क्या लिखना है। समीक्षा यों आरम्भ हो सकती थी—प्रस्तुत नाटक का नायक धीरोदात्त नहीं है, धीरप्रशांत नहीं है, धीरललित

नहीं है, धीरोद्दत्त भी नहीं है। फिर ब्रेकेट डालकर 'इंगलिश' में लिखना था। (Unheroic Hero) लेकिन मैं एक शब्द भी नहीं लिख सका। चपरासी मेरे पीछे खड़ा था। वह अपनी तेज और होशियार आँखों से मेरी प्रत्येक चेष्टा को तोल रहा था। उसकी उपस्थिति और उस की पैनी आंखों ने मानो मेरे हाथ रोक लिए। मैं एक शब्द भी नहीं लिख सका।



परिवर्तन

ठाकुर पुंछी



रेणु शर्मा की शादी थी। हर तरह के दोस्त जमा थे। बारात अभी नहीं आई थी! बातचीत चल रही थी, और हर बात की तान रोमान पर टूट रही थी। रेणु शर्मा ने अपनी मासूमियत और खूबसूरत नक्श की बदौलत बेशुमार ठोकरें खाई थीं, किन्तु हर बार सँभल गई थी। और अन्त में जान-बुझ कर गिरी, तो एक उच्छृंखल और आवारा की गोद में। मौजूदा ज़माने ने इसी का नाम मुहब्बत रखा है। यही मुहब्बत वहां वार्तालाप का विषय बनी हुई थी। एक कोने में डाक्टर खन्ना मेरे साथ ही बैठा था। उसे न मुहब्बत से मतलब था, न रेणु के चले जाने का ग़म, और न बारात के आने की खुशी। वह सिर्फ इस लिए वहां आया था, कि उसे रेणु ने आमन्त्रित किया था, और रेणु उससे घृणा करती थी। अगर रेणु उससे मुहब्बत करती होती, तो शायद वह कभी न आता। वह इस प्रकार का इन्सान था, जो घृणा करने वालों से प्यार करते हैं, और मुहत्बत करने वालों से घृणा। बारात अभी नहीं आई थी, किन्तु चन्द लड़कियां, जो शायद अंधेरे की तालाश में थीं, हमारे निकट आकर खड़ी हो गईं। एक लड़की ने क़हक़हा लगाते हुए कहा—"चक्रवर्ती, तुम दुनिया भर का फ़लसफ़ा छांटो, लेकिन तान आखिर यहीं टूटती है।"

दूसरी लड़की, जो चक्रवर्ती थी, सिटपिटा गई।

"अभी तक वह भली चंगी बैठी है वैवाहिक पोशाक में—रेणु शर्मा—कल यही रेणु शर्मा हो जायेगी रेणु वर्मा। अपना घर जायगा, आंगन जायगा, मा-बाप छूट जायेंगे, भाई बहन बिछुड़ जायेंगे—सिर्फ इस लिए कि वह घर बसा रही है, शादी कर रही है, अनदेखे बच्चों को अपना रही है। और वे लड़के होंगे दुनिया भर के चोर। देख लेना वर्मा साहब को। अभी-अभी सेहरा बांधे होंगे, तो

लड़के होंगे। सुबह जब घर वापिस लौटेंगे, एक पूरी ज़र खरीद जागीर को अपनी बगल से दबाए, तो मर्द बन चुके होंगे। आग लग जाती है मुझे। अगर मैंने मौत को अपनाने में किसी को मुस्कराते देखा है, तो वे लड़कियां हैं औरतें हैं। लानत है ऐसे जीवों पर! और रचियता की क्या कहूं?..."

मिस चक्रवर्ती बिफरी हुई थी। दूसरी लड़कियां अपराधियों की भांति खामोश खड़ी थीं। और मुझे अपने सामने दुनिया और दुनिया के उस अनदेखे भगवान का ढांचा ही बैठता हुआ दिखाई दे रहा था।

डाक्टर खन्ना का रंग पीला पड़ गया। वह सिगरेट-पर सिगरेट जलाए जा रहा था।

"यह लड़की कौन है?" उसने धीमे स्वर में पूछा।

"शायद मिस चक्रवर्ती है।"

"तुम जानते हो उसे?"

"नहीं। लेकिन रेणु शर्मा से उसका नाम अक्सर सुना है।

"ज़ाहिर है, कि मर्दों से नफरत करती है।

"बातों से तो ऐसा ही मालूम होता है।"

फिर हुआ यह कि एक छेड़ी गई नागिन की तरह मिस चक्रवर्ती आई, और उसी सोफे पर धम-से गिर गई, जिस पर मैं और डाक्टर बैठे थे। मैंने वहां से उठ जाना ही उचित समझा।

अब बरात भी आ पहुंची थी।

चक्रवर्ती डाक्टर को देख कर संभली।

"आप यहाँ लकड़ियों की तरह क्यों छुपे बैठे हैं? वहाँ मर्दों में जाइए।"

डाक्टर ने कठिनतापूर्वक जबान खोली—"समझ लीजिए कि मैं लड़की ही हूं, और वह भी आप जैसी, जिसे मर्दों से उतनी ही नफरत है, जितनी लड़कियों से।"

"आपका नाम जान सकती हूं?"

"डाक्टर खन्ना कह सकती हैं वैसे"—

"रेणु शर्मा-वर्मा को आप जानते हैं?"

"मैं रेणु शर्मा-वर्मा को नहीं जानता। किन्तु रेणु शर्मा को जानता हूं, जो वह आज है।"

"मैं आज और कल दोनों की बात कर रही हूं।"

"मैं कल की रेणु वर्मा को नहीं जानता।"

"लेकिन मैं आपको जानती हूं। आज और कल के डाक्टर खन्ना। रेणु ने मुझे बताया है। अजीब इत्तफ़ाक है, और अजीब इत्तफ़ाक भी कैसा। कहां आप पैदा हुए, कहां मैं! ओर फिर मिले भी तो कहां!"

डाक्टर खन्ना खामोश रहा। वह सोच रहा था, कि यह क्षण कहां से उसकी जिन्दगी में आया, जो सदियों की प्रतीक्षा के बाद आता है—दो शरीरों में एक आत्मा, एक कामना का अविर्भाव करने। और फिर वह बिखर जाता है फिज़ाओं में, अनादि प्रेम का एक अधूरा-सा पेग़ाम सुना कर। और उसूल टूट जाते हैं। सदियों का परिश्रम बेबस हो जाता है, और पवित्र कसमें अधूरी रह जाती हैं। दोनों जैसे एक-दूसरे के लिए नफ़रत की आग अपने सीने में दबाए एक-दूसरे की प्रतीक्षा में थे, खोज में थे, विरोधी दिशाओं में भागते हुए भी एक-दूसरे के इच्छुक थे। और, वे मिल गए—धुंध और गुबार की अन्धेरी छांव में। क़रीब आ गए बिना चाहे, और एक साधारण सी कहानी, एक साधारण-सी मुहब्बत को संभाले, बिना बरसे बादलों की तरह आगे बढ़ने लगे। मैं कुछ भी न जान सका। मेरी अवस्था उस किसान जैसी थी, जो बादलों को उमड़ते हुए देखता है, पर कब बरसेंगे, यह नहीं जानता। करीब से देखने पर मिस चक्रवर्ती में सौन्दर्य और खूबसूरती नाम की चीज़ मुझे दिखाई नहीं दी। बस, यौवन था, और वह भी साधारण-सा था, मोटी-मोटी आंखें थीं। चौड़ा मस्तक था, कुछ-कुछ सूझ-बूझ लिये। किन्तु बाल तनिक खूब-सूरत थे। नक्श में जो आकर्षण था, वह ज्यादा करीब से झांकने पर ही दिखाई देता था। रंग न गेहुआं, न सफेद न काला। बस, कुछ इन तीनों के बीच का रंग था। शायरी का अंश न होते हुए भी उसमें आकर्षण था, भरपूर जवानी थी। शांत स्वभाव। क्रोध आने पर ही उसकी ज़बान खुलती। बात-बात पर मर्दों को कोसती, बुरा-भला कहती, गालियों पर उतर आती। किन्तु यह एक वास्तविकता थी, कि वह क्रोध में आकर जब किसी बहस में उलझती थी, तो बहुत ही सुन्दर और प्यारी मालूम होती थी। यही उसका विशिष्ट रंग था, और डाक्टर खन्ना जैसा इन्सान उसके इसी अन्दाज का शिकार था।

डाक्टर खन्ना मेरा अंतरंग मित्र था। कालेज के जमाने से ही घनिष्टता थी हम में। भद्र स्वभाव, स्नेहशील और बेहद शर्मीला। वह उन लड़कों में से था, जो नारी जाति से नफरत करना अपना उसूल बना लेते हैं। डाक्टर खन्ना ने तो इश्क-मुहब्बत की दुनिया से दूर रहने की कसम खा रखी थी। प्रैक्टिस चल निकली थी, और वह अपने उसी वातावरण में खोया रहता था। पहली मुलाकात में वे दोनों एक-दूसरे को इतना प्रभावित न कर सके, कि आगे की मुलाकातों के लिए रास्ता साफ हो जाता।

डाक्टर प्राय: मेरे साथ ही रहता था। कभी उसने चक्रवर्ती का ज़िक्र नहीं किया। मैंने स्वभावानुसार कुरेदा। वह पहले की तरह उद्विग्न हुआ। फिर मेरे अनजाने में बात वहां तक पहुंच गई, जहां तक मेरी कल्पना भी न जा सकती थी। वापसी पर कई बार उस से मिलने गया। पर मुलाकात ही न हुई।

एक दिन क्लब में मिल गया चक्रवर्ती भी साथ थी।

मैंने रस्मीतौर पर पूछा—"प्रैक्टिस कैसी चल रही है?"

"शुक्र है। गुजारा हो रहा है।"

"कई बार गया। तुम न दुकान पर मिले, और न घर पर।"

"अधिकतर बाहर ही रहता हूं।"

"औरतों से नफरत करना तुम्हारी जिन्दगी का उसूल था। वह लड़की तुम्हारे करीब कैसे आ गई?"

उसने इर्द-गिर्द नजरें दौड़ाईं। चक्रवर्ती बहुत दूर थी।

"हो सकता है, कि चक्रवर्ती ने जान लिया हो, कि मैं औरतों से नफ़रत करता हूं, और उसने सिर्फ़ अपनी जाति की उच्चता मुझ पर प्रकट करने के लिए यह क़दम उठाया हो।" फिर एकदम भावुक होकर कहने लगा– 'कुछ भी हो, चक्रवर्ती के लिए मैं अपनी जिन्दगी का महत्वपूर्ण उसूल त्याग कर परेशान नहीं हूं। उसने मुझे चांदनी रातों और स्वस्थ बहारों से प्यार करना सिखाया। और फिर वह जीवनदायक सपने।.. अस्वस्थ वातावरण में रह कर स्वस्थ मनुष्य भी रोगी बन जाता है। एक निर्दय धक्का देकर मेरी मां ने मुझे प्रकृति की जिस अनश्वर मुहब्बत से दूर कर दिया था, वह मुझे चक्रवर्ती की सुगंधिपूर्ण सांसों में मिल गयी .."

एक नया, अजनबी खन्ना मेरे सामने बोल रहा था। मैं कुछ भी न सोच सका। मैं खन्ना की मां की कहानी जानता था। वह बीमार पति और आठ वर्ष

के अपने बच्चे को छोड़ कर कहीं चली गई थी, और पूरे दो वर्ष के बाद खुद ही लौटी थी। कहां गई थी? कहां से लौट कर आई थी? यह सब किसी ने नहीं पूछा। दरवाजा खुला छोड़ गई थी। लौटी, तो दरवाजा खुला ही पाया। वह रो-रो कर बहुत-कुछ सुनाती रही, किन्तु बाप-बेटे ने अपने कान ही बन्द कर लिये थे। और वह अपनी दर्द-भरी दास्तान सुनाती-सुनाती एक दिन सदा के लिए खामोश हो गई। खन्ना के दिल पर वह एक गहरा ज़ख्म लगा था, जो नासूर बन कर सदा उसे सालता रहा। अब वह मां, बहन और बीबी के रिश्ते से भी बहुत दूर था।

मिस चक्रवर्ती से मिल कर न मुझे खुशी हुई, और न दुःख ही। एक साधारण सी लड़की की एक उलझी-सी कहानी थी। मैं तो सुनता भी नहीं, किन्तु डाक्टर स्वयं उलझे हुए उसूलों का उपासक था। उसे दिलचस्प और अनोखी मालूम हुई। जो हुआ, अच्छा हुआ। मादक तनहाइयों को कहीं से जीवन का विषय मिल गया। दिल से चाहता था, कि खन्ना की जिन्दगी में हलचल पैदा हो, और नफ़रत का ज़हर दब जाय। और वास्तव में अब ज़हर दब चुका था। उसे मुहब्बत का आनन्द प्राप्त हो रहा था। दोनों एक साथ रहते। मिस चक्रवर्ती सुशिक्षित थी, और किसी अच्छी नौकरी पर थी। काफ़ी ज़हीन भी थी। मर्दों से उसे क्यों नफ़रत थी? जब क्रोध में आ जाती थी, तो क्यों उन्हें बुरा-भला कहती थी? मैंने बहुत कुरेदा, पर कुछ प्राप्त न हुआ। हमेशा मुस्करा कर टाल देती। उसके भीतर जो नफ़रत का ज़हर था, शायद वह भी खतम होता जा रहा था।

तमाशाई तमाशा देख रहे थे। मुहब्बत की पेंगें ऊपर ही ऊपर उठती जा रही थीं। दोनों एक साथ मुहब्बत के झूले पर बैठे, इश्क की रोमानी घाटियों में खो जाते।

चक्रवर्ती कहती—"तुम डरपोक हो।"

"कैसे?"

"पेंग को ऊँचाइयों पर पहुँचने ही नहीं देते।"

"मैंने कब रोका?"

वह पैर फैला कर जवाब देती—"अभी, अभी।"

डाक्टर खन्ना शरमा जाता। चांदनी रातें दूर-दूर तक फैल जातीं, और अणु अणु में मुहब्बत की सदा बहार खुशबू बस जाती। स्वच्छन्दता कहीं से प्रकट होती, और वह बाहें फैला देता। बढती हुई पेंगों की हिलोरें एकदम तेज़ हो कर थम जातीं।

मुहब्बत की पेंगें इसी प्रकार बढ़ती गईं–ऊपर, और ऊपर उठती गईं। कई बार ऐसा हुआ, कि उसने मुहब्बत की उस कोंपल को होठों से छूने की चेष्टा की, जो दूर होते हुए भी निकट दिखाई देती थी। आशा के विपरीत चक्रवर्ती ने ढील कर दी। और पेंगें मन्द होती गईं। और फिर दोनों निश्चल खड़े थे।

डाक्टर खन्ना की प्रैक्टिस बैठती गई। मिस चक्रबर्ती की मुहब्बत जोर पकड़ती गई। उन्हीं दिनो मुझे कपूर मिला। वह बम्बई से देहरादून जा रहा था। मैं स्टेशन पर उससे मिलने गया। वह डाक्टर खन्ना को अच्छी तरह जानता था, और शायद कुछ-कुछ चक्रबर्ती को भी। दोनों की प्रेम-कहानी सुनी, तो खिल-खिलाकर हँस पड़ा।

मैंने पूछा—"क्या बात है?"

कहने लगा–"दुकान पर नाम का बोर्ड तो लगा होगा?"

"बहुत ही खूबसूरत। नगर भर में शायद ऐसा खूबसूरत बोर्ड और कहीं दिखाई देगा। शायद किसी अंग्रेज आर्टिस्ट ने लिखा है।"

उसने कहकहा लगाया। दोनों में से एक ही चीज रहेगी—चक्रवर्ती या खन्ना।"

वह अपनी बात स्पष्ट न कर सका। गाड़ी चल पड़ी। मैंने सोचा, 'डाक्टर की प्रैक्टिस की बात कर रहा है। वह तो रहेगी ही नहीं। यही मो मेरा अपना अन्दाजा भी था।'

एक दिन डाक्टर मुझे मिला। बहुत खुश था। घर को नये ढंग से सजाया था। नये पर्दे, नया फ़र्निचर, नाम का बोर्ड भी नया और पहले से बड़ा। सब-कुछ ही नया-नया था। अब वह शादी की तैयारियां कर रहा था।

फिर हुआ यह, कि एक दिन उन्होंने आखिरी बार अपनी नई-पुरानी यादों को समेट कर पेंग बढ़ाई। चांदकी रात थी। हल्की-हल्की हवा थी। हरियाली घाटियां थीं मजबूत ऊंचा वृक्ष था। मजबूत रेश्मी डोर थी। मजबूत स्वस्थ हाथ थे। पेंगें बढ़ती गईं, फ़िज़ाओं को अपनी लपेट में लेती रहीं। आज वे दोनों मुहब्बत को एक साथ चूम कर एक हो जाने का फैसला करने वाले थे। कोंपल उनके निकट हो कर दूर हो जाती, उनके जिस्मों को गुदगुदा कर भाग जाती।

चक्रवर्ती ने बात छेड़ी—"तुम मुझ से मुहब्बत करते हो?"

डाक्टर खन्ना ने भावुक होकर उत्तर दिया—"अपने नाम और पेशे से भी ज्यादा!"

पेंग ऊपर उठी। मुहब्बत की कोंपल होंठों के निकट आती गई। "जो कहूंगी, मानोंगे ?"

"हां।"

"सब-कुछ छोड़ दोगे ?"

"जो कुछ मेरे पास है, तुम्हें सौंप दूंगा।"

"अपना नाम-निशान भी ?"

"हां।"

चक्रवर्ती ने प्यार-भरे लहजे में कहा—"शुरू से ही मुझे एक बात से चिढ़ है।"

"किस बात से ?"

"तुम उसे छोड़ोगे नहीं।"

"बात तो बताओ।"

पेंगें उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थीं। कोंपल बार-बार झुक कर मुहब्बत के होंठ चूमने को तरस जाती।

"अपना कान मेरे समीप लाओ।"

"यहां कौन सुन रहा है ?"

"तुम अपना कान इधर लाओ तो।"

उसने अपना कान उसके होंठों के क़रीब दिया।

चक्रवर्ती गुनगुनाई।

जैसे ही उन गुनगुनाहट के बोल कान में पड़े, रेशमी डोरी हाथ से छूट गई।

वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उसके सोचने और समझने की शक्तियां जड़ हो गई। अभी-अभी वह रोमानी घाटियों में खोया हुआ था। अभी-अभी वह मरुस्थल में खो गया। उसने नजरें फैलाईं। वहां न चक्रवर्ती थी, न पेंग, न झूले की मजबूत रेशमी डोरी, और न मुहब्बत की कोंपल। वहां कुछ भी न था। चांदनी रात भी अंधेरी हो गई थी। और उसी अन्धेरे में वह एक रुण्ड-मुण्ड दरख्त की तरह औंधे मुंह पड़ा था।

दूसरे दिन डाक्टर से मुलाक़ात हुई। दुकान खुल गई थी। मैंने चक्रवर्ती के बारे में पूछा। वह बिफर गया। पागलों की तरह उछल-उछल कर डाक्टरी भाषा में गाली बकने लगा—

"वह एनेमिक है !"

"ट्यूबरकुलर है !"

"कालेरिक है।"

मैंने दिल-ही-दिल में मतलब समझा—वह रक्त-हीनता की मारी है। क्षय-ग्रस्त है। हैजे की मारी है।

इसी प्रकार की कई गालियां उसने बकीं। उसके मुंह से झाग निकल रही थी। वह पागल हो रहा था। उसे सख्त धक्का लगा था। शायद चक्रवर्ती ने धोखा दिया था। वह बहुत दुःखी और निराश था। उसे फिर नारी जाति से नफ़रत हो गई थी। नफरत का वह जहर तीव्रता से उभर आया था, जो चक्रवर्ती की सुगन्धिपूर्ण सांसों में दब गया था।

कई दिन से उससे न मिल सका। चक्रवर्ती ने शादी की कोई शर्त रखी थी। क्या शर्त हो सकती थी ? हो सकता है, कि उसने कहा हो कि शादी के बाद वह अपनी स्वतंत्र ज़िंदगी को क़ायम रखेगी, या अपनी नौकरी क़ायम रखेगी, या फिर बच्चे पैदा करने से परहेज करेगी। मेरे सामने तो इसी प्रकार की शर्तें थीं, जो आजकल की मार्डन-टाइप; पढ़ी-लिखी, नियोजित लड़कियां प्राय: शादी से पहले रखती हैं। किन्तु खन्ना तो बहुत उदार-हृदय और प्रगतिशील था। और क्या शर्त हो सकती है ? कई दिन सोचता रहा। पूछ-ताछ की। घाव ताज़ा था। फ़ायदा उठाने का प्रयास किया। सोचा, कि इसी बहाने डाक्टर की नाव किनारे लग जाय।

बहुत-कुछ निश्चित करके मैं उससे मिलने चल पड़ा। शाम हो गई थी, जब मैं उसके मकान पर पहुंचा। दरवाज़े पर पहले की तरह नाम के बोर्ड पर नजरें पड़ीं, और वहीं जम गईं। कपूर के शब्द कानों में गूंजे, "या तो खन्ना रहेगा. या चक्रवर्ती।" मैंने अपनी आंखों को ढील दे कर फिर देखा। लिखा था—'डाक्टर प्राणनाथ चक्रवर्ती।" मैं दुकान की ओर बढ़ा। नये बोर्ड पर नये अक्षर थे—डाक्टर प्राणनाथ चक्रवर्ती।'

रेणु शर्मा शादी के बाद रेणु वर्मा बन गई, क्योंकि लड़का वर्मा था। डाक्टर प्राणनाथ खन्ना शादी के बाद प्राणनाथ चक्रवर्ती बन गया, क्योंकि लड़की चक्रवर्ती थी।

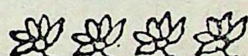
रेणु वर्मा ! प्राणनाथ चक्रवर्ती !

मेरा सिर कई दिन तक चकराता रहा, हालांकि कोई बड़ी बात न थी।



हृदय का रहस्य

पुष्करनाथ



सब कुछ समाप्त हो गया। अभी पलक झपकते ही मैं देख ही रहा था, कि कमान का तनाव टूट गया। अब किसी तरह की घुटन का अनुभव न होगा, कोई खंजर पहलू में बाकी न रहेगा, सीने में कोई आग नहीं भड़केगी। अनायास और गहरे अंधकार का एहसास दिल में कोई भय उत्पन्न न करेगा। अब तो केवल सन्नाटा है—गहरा सन्नाटा।

जैसे रात भर किसी बीमार ने दर्द में तड़प-तड़प कर, मचल-मचल कर, चीख-चीख कर सुबह होते ही दम तोड़ दिया हो। आगे क्या होगा—क्या होगा ?

वह हल्के नीले रंग का टुकड़ा हवा के हल्के झोंके से बहुत दूर चला गया है—इतनी दूर नहीं कि मैं देख ही न सकूँ, परन्तु इतना दूर अवश्य हो गया है कि मैं उसे छू न सकूँ। न जाने यह कैसी निश्चेष्टता है, कि उठा न जा सकेगा, कोई अंग हिलाया न जा सकेगा। केवल आंखें हैं, जो देख रही हैं। दिमाग है, जो सोच रहा है। न जाने क्या सोच रहा है। अब इस सोच की कोई मंजिल नहीं है। मंजिल तो पहले भी न थी, लेकिन मंजिल का एहसास तो था। अब यह एहसास भी छिन गया। क्या यह सोच न छिन जायेगी ?

एक-एक क्षण, एक-एक पल को यह कुरेद-कुरेद कर उभार रही है। अब यह कुरेद कैसी ? कौन-सा घोंसला बनाना है ? सभी घोंसले तो अभी अभी उजड़ गए हैं। बस इसी एक क्षण, एक पल में सब-कुछ हो गया। उफ ! यह एक पल का जादू। मैंने कभी इस जादू को नहीं जगाया था। सहमा-सहमा-सा,

बुझा-बुझा-सा इन्सान, समय की कड़ी से कड़ी मिलाता हुआ, जीवन के आदि और अनादि के पहिये को चलाता हुआ, भला यह इन्सान कोई जादू कैसे जगाएगा ? एक छोटी-सी धुरी, छोटा-सा आंगन, छोटा-सा आसमान, छोटी-सी दुनिया। कोई आकांक्षा नहीं, कोई इच्छा नहीं, कोई दु:ख नहीं, कोई खुशी नहीं, कोई जन नहीं, कोई अहं नहीं। इस नीरस संसार का वासी, भला मैं समय के साथ क्या उलझता ?

सुबह दस बजे कालिज जाता था। शाम को चार बजे आखिरी क्लास लेने के बाद घर वापस आता था। बहुत हुआ, तो छुट्टी के दिन सिनेमा चला गया। रुक्मिणी के सिवा कोई साथी नहीं, हमदर्द नहीं, दोस्त नहीं, जिसने सारा जीवन नौकरानी के भेष में बिताया था। मेरी नौकरानी नहीं, उसकी नौकरानी। वह मालकिन थी—रुक्मिणी की भी, और मेरे छोटे-से फ्लैट की भी। कहने को तो मैंने फ्लैट कह दिया, परन्तु वास्तव में यह इस हवेली का ही एक हिस्सा है। थोड़ा-सा अदल-बदल करके इसे फ्लैट की-सी शक्ल दे दी गई है, क्योंकि हवेलियों का अब रिवाज़ नहीं रहा। बीच में एक लम्बी-चौड़ी दालान है। उससे थोड़ा हट कर हवेली का मध्य भाग है, जिसमें रुक्मिणी और उस की मालकिन का घर है। दायें भाग में कुछ कमरे किराये पर उठाए गए हैं। साथ ही एक अस्तबल है—कभी था। अब तो उसे बदल कर गैराज बना दिया गया है, जिसमें वह हल्के आसमानी रंग की शिवरलेट कार रहती है, जो बाह्य सुन्दरता के कारण नई, मालूम होती है, परन्तु वास्तव में पुराना मॉडेल है। उसके साथ ही दो कमरे हैं, जिन में ड्राइवर और उसका परिवार रहता है। इन कमरों से थोड़ा हट कर रसोइये का कमरा है जिसमें वह अपनी बहू और बेटे के साथ रहता है। इस कमरे के बाद पचास कनाल जमीन पर फैला हुआ वह बगीचा है, जिसमें कहते हैं कि कभी नहर बहती थी, और फौवारे थे। अब तो नहर और फौवारे नजर नहीं आते। वहां अब शलगम, गोभी और आलू इत्यादि की क्यारियां हैं। किन्तु वह चारदीवारी, जो इस बगीचे के गिर्द बनी है, अब भी उस तरह खड़ी है। और वह ड्योढ़ी भी खड़ी है, जिसके दोनों ओर कभी दो वर्दीपोश सिपाही हमेशा खड़े रहते थे। ऊँचा, कंधे पर महराब थामे, गर्वोन्नत ड्योढ़ी—न जाने किस वैभव, दबदबे और किन रहस्यों की प्रहरी।

कुछ चीज़ें तो पलक झपकते ही बदल जाती हैं। परन्तु इस हवेली का इतिहास, धीरे-धीरे, कई पीढ़ियों में बदला था। पहले जागीरें गईं, फिर जमीनें गईं, फिर कारिन्दे, मुंशी, नौकर-चाकर, चौकीदार गए, फिर अस्तबल के घोड़े

गए, फिर चांदी के बरतन गए। फिर बड़े-बड़े कालीन और फालतू फर्नीचर गए। चौदह-पन्द्रह वर्ष में ये परिवर्तन आये। अब भी बहुत-कुछ वाकी है। थोड़ी बहुत जमीनें भी हैं। घोड़ा-गाड़ी की जगह कार आ गई है। नौकरों की संख्या में बहुत कमी कर दी गई है। कुछ चीजों को नये ढांचे में ढाला गया। जैसे हवेली--इस का एक हिस्हा छोड़ कर, बाकी हिस्सों को किराये पर उठाने के योग्य बना दिया गया। उस के एक हिस्से में वही पुरानी शान बनी हुई है। झाड़ और फानूस लगे हुए हैं। वंश के सभी राणाओं की बड़ी-बड़ी तस्वीरें, सुनहरी फ्रेमों में जड़ी, गोल कमरे में अब भी लगी हुई हैं। एक पूरी दीवार पर तलवारें, बन्दूकें, खंजर और अन्य अस्त्र उसी शान से मौजूद हैं। कुछ मखमली कुर्सियां अब भी बाकी हैं। हाथी मर तो गया है, परन्तु अब भी सवा-लाख रुपये का है।

राणा रतनसिंह इस हवेली का अन्तिम उत्तराधिकारी था। तेरह बर्ष की आयु में उसकी सगाई पास के इलाके के जमींदार की इकलौती बेटी से हुई थी। अठारह वर्ष की आयु तक राणा की शिक्षा-दीक्षा होती रही। उसे शिकार खेलना सिखाया गया, घुड़सवारी के कर्त्तव्य सिखाये गये, राजनीति के गुर समझाये गये, सरकार के साथ की गई संधियों के भेद बताये गये, हवेली और उससे सम्बन्धित अन्य बातों की ऊंच-नीच बताई गई। अठारह वर्ष की आयु में उसका विवाह होने का निश्चय हुआ। तिथि निश्चित हुई, तैयारियों का आदेश दिया गया। सारी मण्डी और उसके निकटवर्ती इलाकों में सात दिन का उत्सव मनाने की घोषणा की गई। सात दिन के बाद बारात लेकर राणा को जमींदार ठाकुर जयगोपालसिंह के घर जाना था, और चन्द्रमुखी को ब्याह कर लाना था।

सात दिन गुजर गए। बारात चल पड़ी, और जमींदार के घर भी पहुँची। परन्तु जब वहां से वापस हुई, तो चांदी की डोली में चन्द्रमुखी दुल्हन नहीं थी—चन्द्रमुखी विधवा थी। भाग्य की कितनी बड़ी ठिठोली, कितना बड़ा उपहास! एक क्षण पहले चन्द्रमुखी दुल्हन बन कर सोलह सिंगार किये सहेलियों के झुरमुट में बैठी चहक रही थी, और दूसरे ही क्षण एक नौकर हांफता-कांपता, लड़-खड़ाता, थरथराता हुआ आया, और सूचना दे गया—राणा जी पर गोली चलाई गई। बारहदरी में बैठे थे। दो गोलियां चलीं, और राणा जी के सीने में उतर गई। एक पल इसी प्रकार पलक झपकने में बीत गया, और चन्द्रमुखी विधवा हो गई।

और विधवा को चांदी की डोली में बिठा कर लाया गया : क्योंकि जय गोपाल की यही इच्छा थी, और राणा रत्नसिंह के बूढ़े मामू की भी यही मर्जी थी। हवेली में राणा नहीं रहे, तो क्या हवेली रानी से भी वंचित रखी जायेगी? साल दो साल तक पुलिस खूनी को तलाश करती रही। कत्ल का मकसद जानने की कोशिश करती रही। खानदानी दुश्मनी से ले कर प्रेम की प्रतिस्पर्धा तक, सभी चीजें खंगाली गईं। परन्तु व्यर्थ। धीरे-धीरे रानी चन्द्रमुखी के दिल में चिता के शोले मद्धिम पड़ गए। फिर इन शोलों की जगह एक गहरे जख्म ने ले ली, जो रूह की तरह गहरा और मृत्यु की तरह निस्सीम था। हवेली में रानी ने सभी चीजों का परित्याग कर दिया। बनावसिंगार, चांदी के बरतन और सोने के चम्मच, मखमली बिस्तर और रेशम के पर्दे। बहुमूल्य साड़ियां और ढेरों गहने और इन चीजों के बदले गीता को अपना लिया। रोज अठारहों अध्यायों का पाठ करतीं। हवेली के भीतर बने ठाकुरद्वारे में अपने वैधव्य की घड़ियां व्यतीत करती। केवल एक नौकरानी रुक्मिणी को सामने आने की आज्ञा थी। यह रंग उस समय भी रहा, जब हवेली से हुक्मनामे जारी होते थे। और यही रंग तब भी बना रहा, जब सरकार के हुक्मनामे हवेली में आने लगे।

न जाने रुक्मिणि को मेरे साथ क्यों स्नेह हो गया था। वरन् मैं ये सब बातें कैसे जानता? इन हवेलियों की बातें और यहां के रहस्य ड्योढी से बाहर नहीं जा सकते थे। एक दिन, जब मुझे इस हवेली में रहते हुए पांच वर्ष हो चुके थे, मैंने रुक्मिणि से कहा—"मौसी, मुझे एक बार रानी जी के दर्शन कराओ।"

मेरी बात सुन कर, रुक्मिणि घबरा गई।

"कैसी बात करते हो, बेटा? इस बुढ़ापे में मेरी मिट्टी खराब करवाओगे क्या?"

"क्या इतनी निष्ठुर है यह तेरी रानी?"

"नहीं, बेटा। ऐसा न कहो। पर सोचो, जिस स्त्री ने चौदह वर्ष तक किसी भी पुरुष को अपनी छाया तक न दिखाई हो, उससे मैं कैसे कहूँ, कि—"

"चौदह वर्ष? चौदह वर्ष तो बहुत होते हैं, मौसी। राम बनवास भी चौदह वर्ष का ही था।"

"हां बेटा, चौदह वर्ष एक बहुत लम्बी अवधि होती है, और रानी जी ने इन चौदह वर्षों में अपने पिता तक को कभी पास नहीं आने दिया।

एक मैं बुढ़िया रह गई हूँ। न कभी ब्याह रचाया, न घर-गृहस्थी देखी, न सन्तात देखी। इतनी उमर हो गई नौकरानी का काम करते। इसी हवेली में पैदा हुई, यहीं किसी दिन मर भी जाऊंगी। लेकिन यह जीवन क्या, मैं हजार जीवन रानी जी पर निछावर कर सकती हूँ।"

"अरे मौसी, तुम तो रोने लगीं सचमुच ?"

"बेटा, क्या बताऊँ तुझे ? कभी कोई बात नहीं करती, कभी किसी से कुछ नहीं कहती। जो मिला, खा लिया। नहीं मिला तो न सही। बस, जिये जा रही है। अगले साल तीस वर्ष की हो जाएगी।"

"मौसी, बहुत सुन्दर है क्या ?"

"सुन्दर ? तुम सुन्दर कहते हो ? मैं कहती हूँ, यदि इन्द्र के अखाड़े की परी सामने आ जाए, तो पानी भरे !"

उस दिन पहली बार रानी को देखने का मुझे शौक हुआ। लेकिन कहां देखूं ? कभी बाहर नहीं आती। कभी दालान में पांव नहीं रखती। किसी बराम्दे में से नहीं गुजरती। किसी खिड़की के पास नजर नहीं आती। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन रानी की झलक तक न पा सका। न जाने क्यों यह शौक चर्राया था मुझे। पागलपन ! हां, धीरे-धीरे यह शौक पागलपन ही बन गया। यहां तक कि एक वर्ष बीत गया। और फिर अचानक बेखबरी में बिना किसी पूर्वाभास के एक दिन मैंने रानी को देख लिया—रुक्मिणि साथ थी। हाथ में एक हल्की-सी टोकरी फूलों से भरी हुई, काले रंग के शाल में सिर से पाँव तक लिपटी हुई, नजरें झुकाए, माथे पर कोई बल नहीं, चेहरा भावहीन। केवल एक प्रकाश का पुंज था। उसने सहसा नज़रें उठा कर मुझे देखा। उन नज़रों में कोई रोष नहीं था, कोई कड़ुवाहट नहीं थी, कोई भाव नहीं था। बस नजरें थीं—देवी की मूर्ति की नजरें, पथराई हुई-सी परन्तु सजीव एवं शाश्वत। स्थिति के अत्यधिक असह्य होने पर मैं भाग खड़ा हुआ। शाम को रुक्मिणि आई।

"बड़े शरारती हो। देख लिया न रानी जी को ?"

"हां, मौसी। बहुत नाराज हुई होंगी। तुम से क्या कहा ?"

"कहने लगीं, 'कौन था ?' मैंने कहा—'प्रोफेसर साहब थे, ड्योढ़ी के किरायेदार।"

उस रात मैंने एक सपना देखा—सुरमई पलकों वाला सपना, भीगे बालों वाला सपना, छमछम वर्षा करता हुआ। मेरे हृदय के दर्पण पर वर्षा की बूँदें टप-टप गिरीं,

और उसे धुंधला कर गईं। चौदह वर्ष की तपस्या के पश्चात् जब रानी ने आंखें खोलीं, तो सामने एक अभावग्रस्त और निराश्रित व्यक्ति खड़ा था, थरथर काँपता हुआ और उन नजरों की असह्य ज्योति से वह इन्सान भस्म हो गया। वह इन्सान मैं था।

न जाने यह कौन-सी मंजिल होती है, जब बुद्धि को तिलांजलि दे दी जाती है, जब चेतना की डांट-फटकार को दबा दिया जाता है। जब विचारों के प्रवाह को रोक दिया जाता है। कहते हैं, कि इस मंजिल पर पहुँच कर जो भटक गया, वह भटकता ही रहता है।

"क्या हो गया है तुम्हें? यह चुप क्यों छाई हुई है। यह चेहरा क्यों पीला हो गया है तुम्हारा?"

इतने दिनों बाद आखिर रुक्मिणि से न रहा गया। पूछ ही बैठी।

"कुछ नहीं, मौसी। ठीक तो हूँ। तुम्हारा भ्रम है।

रुक्मिणि की आंखें डबडबा आईं। वह देर तक टूटी हुई टहनी को देखती रही।

"हाँ, मुझ से क्यों कहोगे? सोचती हूँ, कि अगर ब्याह किया होता, और घर बसाया होता, तो तुम्हारे ही जैसा एक बेटा मेरे भी होता। मैं उससे पूछती, 'बेटा! क्या दुःख है तुझे? तो—तो—", रुक्मिणि की हिचकी बंध गई।

"यह तुम से किस ने कहा मौसी, कि मुझे कोई दुःख है?"

"तुम्हारी हालत ने। यह दाढ़ी क्यों नहीं बनाते? यह इतनी मैली कमीज पहने तुम्हें कभी नहीं देखा था। यह—यह उतरा हुआ चेहरा तो पहली बार देख रही हूँ। रात-रात भर बिजली जलाये, कमरे में टहलते रहते हो।"

रुक्मिणि के आँसू बिजली की रोशनी में मोतियों की तरह दमकने लगे। मैं दिल-ही-दिल उन मोतियों को अपनी पलकों से चुनता रहा, लेकिन रुक्मिणि से कुछ न कह सका। क्या कहता? कैसे कहता?

धीरे-धीरे सारी चीजें धुँधला गईं। कोई चांद न रहा। सूर्य का प्रकाश न रहा। वृक्षों की हरियाली और फूलों के रंग न रहे। केवल एक चीज बाकी थी, लेकिन उसे भी किसी व्यर्थ अरमान की तरह संसार से छिपाए-छिपाए रखना पड़ा। एक खंजर पसलियों में चुभा था, जिसे रखा नहीं जा सकता था, और निकालते भी न बनता था। एक आग दिल में, जिसे न संभालते बनता था, न बुझाया जा सकता था। जला दो! मेरे रोम-रोम और अंग-अंग को

राख कर दो। हाय, इस जलने में कितना आराम था, कितनी शान्ति थी।

उस दिन रुक्मिणि जो आई, तो मैं रोज की तरह आंखें बंद किये, सोफे पर बैठा था।

"बेटा, क्यों सताते हो मुझे ? दो दिन से खाना नहीं खाया। मुझ से कहो, क्या बात है ? कौन है वह ? कहां रहती है ? मैं इन सफेद बालों का वास्ता दूंगी। उसके आगे हाथ जोड़ूंगी, उस के पांव---"

"ऐसा न कहो, मौसी, ऐसा न कहो। में इस योग्य नहीं हूँ ?"

"अच्छा, यदि तू न बतायेगा, तो मैं जाकर अभी हीरा चाट लूंगी !"

मैं रुक्मिणि की आवाज सुन कर काँप गया। उसकी आवाज में दृढ़ संकल्प था। मैंने उसकी आंखों में झांका।

"नहीं सुन पाओगी।"

"तुम बता के तो देखो, बेटा।"

"चन्द्रमुखी।"

अचानक रुक्मिणि की आँखें बुझ गईं। एक पल के लिए उन आँखों में विस्मय और भय की परछाई तैर गई। फिर उन में लाली छाने लगी—तीव्र क्रोध की लाली। फिर उसकी आंखें प्रचण्ड हो गईं, और दूसरे ही पल रुक्मिणि भाग कर कमरे से बाहर चली गई।

बहुत दिन बीत गये। रुक्मिणि फिर कभी मेरे पास न आई। मुझे इंतजार भी न रहा। किस का इंतजार ? एक हल्का-सा धीमा-धीमा-सा दर्द उसी तरह बना रहा। बहुत दुःख दिये अपने आप को, बहुत कष्ट झेले। आखिर एक दिन मैंने फैसला किया, कि मैं चला जाऊँगा। यूं किसी की तपस्या भंग करने का मुझे कोई अधिकार नहीं।

किन्तु उसी दिन शाम को रुक्मिणि सात महीने के बाद मेरे पास आई। बैठते ही उसकी आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई।

"क्या बात है, मौसी ?"

रुक्मिणि की हिचकियां बंध गईं। देर तक उसकी हिचकियां कमरे के बोझिल वातावरण में तैरती रहीं।

"बेटा, रानी जी की तबीयत बहुत खराब है।"

"क्यों, क्या हुआ है उनको ?"

"न जाने क्या हुआ ? सारी-सारी रात जागती रहती हैं। कभी-कभी छमछम आंसू बहाने लगती है। परसों कहा, मेरे सारे कपड़े निकाल दो। सारे जेवर निकाल दो। फिर बारी-बारी से उन कपड़ों को पहनने लगीं। जेवरों को पहन-पहन कर उतारती रहीं। सारी रात यही होता रहा। कोई परछाईं पड़ गई है शायद। कभी रात को उठ कर सिंगार करने लगती हैं। मुझ से उनकी यह हालत देखी नहीं जाती। कल रात अचानक सारे कपड़े फाड़ डाले। कहने लगीं—"दम घुट रहा हैं।"

'किसी डाक्टर को बुलाना था।"

"कैसे बुलाती, बेटा? वह मानें, तब न। कहती हैं, "मुझे कुछ नहीं हुआ है।, तुम्हीं बताओ, क्या करूँ, बेटा बहुत बहुत परेशान हूँ। अब तुम्हारे पास आई हूँ।"

"मैं तो जा रहा हूँ,, मौसी," मैंने उत्तर दिया।

रुक्मिणि एक क्षण के लिए जैसे ठहर-सी गई। जैसे अचानक उसे कुछ याद आ गया।

"चले जाओगे ?......ठीक है। चले जाओ।"–उसने बुझी-सी आवाज में कहा।

"मौसी, मेरे पागलपन के बारे में किसी को कुछ न बताना। भूल जाना मुझे, और—"

"हां, बेटा, जरूर भूल जाऊँगी। उस दिन मुझ पर पागलपन सवार हो गया था। मैं रोती हुई रानी जी के पास गई, और सब कुछ रानी जी से कह दिया।"

"मौसी !" मैं चीख पड़ा—"मौसी, तुमने बहुत बुरा किया। ओह, अब मैं कैसे जीवित रहूँगा।"

"क्षमा करना, बेटा। तुम नहीं जानते, मैं रानी जी को कितना प्यार करती हूँ। मेरा पिता, मेरा पति, मेरा बेटा—सब-कुछ वही हैं। कैसे न कहती उनसे ? ...सुन कर हल्के से मुस्कराईं, और कहा—रुक्मिणि भूल जाओ इस बात को।"

"हाय, रुक्मिणि, तुमने यह क्या किया ? मुझे बीच मैदान नंगा कर दिया। अब मैं क्या करूँ ? मैं कल सवेरे शीशे में अपना चेहरा कैसे देखूँगा।" फिर मुझे होश ही न रहा, कि रुक्मिणि कब उठ के चली गई। मैं जल्दी-जल्दी अपना सारा सामान बांधने लगा। अब इस शहर में मेरा कोई बसेरा न था। थक-हार कर मैं एक कुर्सी पर ढेर हो गया।

बाहर रात धीरे-धीरे ठण्डी हो रही थी। दूर नीचे कहीं नया दिन जन्म ले रहा था। इसी दुखदायी घड़ी में मेरी आँख लग गई।

सुबह मैं एकदम जाग पड़ा। जैसे किसी ने झिझोड़ कर जगा दिया हो। बाहर ऊधम मचा हुआ था। शंख जोर-जोर से बज रहे थे। औरतों के रोने-पीटने की आवाजें आ रही थीं। दूर ड्योढ़ी में कोई व्यक्ति चीख रहा था।

"रानी जी मर गईं!"

तत्क्षण मेरे कानों पर पर्दे गिर गये। गहरा सन्नाटा छा गया। दीवारें और दरवाजे स्तब्ध हो गये। आह, यह मुझ से उठा क्यों नहीं जाता? यह मेरे हाथ-पाँव पत्थर-से क्यों हो गये हैं? मेरी आंखों से झरने क्यों उमड़े पड़ रहे हैं?

"मुझे रानी जी के अन्तिम दर्शन करने दो!" किसी व्यक्ति ने रोते-रोते पुकारा।

"नहीं!" किसी स्त्री ने रोते-रोते कहा।

सामने दीवार पर सूर्य का प्रकाश बहुत तेज है। अब यह प्रकाश नीचे खिसकने लगा है।

"अरे, रास्ता दो। अर्थी जा रही है।"—कोई पुकार रहा है।

रोती हुई आवाजें ड्योढ़ी तक आ गई हैं। अब ये आवाजें ड्योढ़ी से बाहर आ गई हैं। अब गहरा सन्नाटा है। सूर्य का प्रकाश धीरे-धीरे मद्धिम पड़ने लगा है।—मद्धिम और मद्धिम। अब अंधेरा है—गहरा अंधेरा।

यह एक साथ सारी चीजें कैसे थम गई हैं? यह—यह निस्तब्धता कैसी है? इस निश्चेष्टता की स्थिति को क्या कहा जाये? कोई अंग हिलाया न जा सके, कोई आवाज सुनी न जा सके। क्या सारे एहसास डूब गए हैं?

वह रुक्मिणि दरवाजे में खड़ी है। कुछ कह रही है शायद। क्या कह रही हो, मौसी?

अरे, यह बिजली जला दी तुमने...पगली! यह छोटा-सा बल्ब इतने गहरे अंधेरे का मुकाबला कैसे कर सकेगा? इस लिफाफे में क्या लाई हो? देखूं? कैसे पकड़ूं? हाथ हिलाया भी तो नहीं जाता। तुम समझती क्यों नहीं, मौसी? कोई अंग हिलाया नहीं जाता। न जाने क्या कह रही हो। मेरी बात का उत्तर तो नहीं दे रही हो? अरे, यह तुम छाती क्यों पीट रही हो?... हां, यह तुम ने अच्छा किया, जो लिफाफे में से यह कागज का टुकड़ा निकाल

लिया। नजदीक लाओ। थोड़ा और नजदीक।

'बहुत दिनों से महसूस हो रहा था, कि पांव डगमगाने लगे हैं। सोचा, कि अब मर जाना चाहिए। रुक्मिणि का ध्यान रखियेगा।

चन्द्रमुखी।'

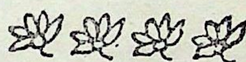
इतना जल यह झरना कहां से लाया?

रुक्मिणि चली गई। वह हल्के नीले रंग के कागज का टुकड़ा फड़फड़ाता हुआ दूर चला गया। भगवान के लिये, उस कागज के टुकड़े को रोक लो! कहीं वह इस ड्योढ़ी से बाहर न चला जाए!



पारो

घनश्याम सेठी



उसकी कोठड़ी के सामने वाली नाली साफ़ हो चुकी थी।

आज नाली को साफ़ देखकर उसे सब कुछ नया-नया-सा मालूम हो रहा था। शायद इसलिये कि नाली की गन्दगी उसके जीवन का एक अंग बन चुकी थी। उसकी आंखें वही वस्तु देखना चाहती थीं, जिसकी वे अभ्यस्त हो चुकी थीं। उसने अपने पपोटों पर एक अप्रिय बोझ-सा अनुभव किया, वह बेचैन-सी हो गई, उसकी तबीयत उस परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी।

बिजली के खम्बे के पास मेहतरों का जमादार मेहतरों और मेहतरानियों को गालियां दे रहा था। उनके भूखे पेट, उन मोटी-मोटी गालियों को हजम कर रहे थे। कभी-कभार किसी के माथे पर बल आ जाता, जैसे उसे बलपूर्वक, कैस्टर-आॅयल पिलाया जा रहा हो मगर जमादार के भाषण में इतना प्रवाह था गोया वह उन गालियों का ही वेतन पाता है।

गली में एक भीड़-सी एकत्रित हो गई थी। म्युनिसपेलिटी की गाड़ियों की 'पौं, पौं' सुनकर बच्चे-बूढ़े सब बाहर निकल आए थे। पहियों की सरसराहट ने उनके खामोश जीवन में एक विशेष कसमसहाट भर दी थी परन्तु रामू हलवाई दबी-दबी सरगोशियों में सब से कह रहा था कि आगामी चुनावों में 'चेयरमैन' साहब प्रदेश सभा के लिए खड़े होंगे, इसलिए आजकल वह प्रत्येक व्यक्ति की बात बड़े धैर्य से सुनते हैं। मंगलू को तीस रुपये की नौकरी आज ही दिलवा दी है, उसने भी अपने मुहल्ले के एक-एक वोट का पक्का आश्वासन दिया है। कल्लू को सड़े हुए फल और रहीम को सड़ा हुआ गोश्त बेचने की अनुमति मिल गई है, उन सब की यही प्रार्थना थी कि

चेयरमैन साहब सदा किसी न किसी चुनाव के झमेले में ही रहा करें। सफाई, और फिर नालियों की सफाई, और फिर इस फटेहाल मुहल्ले में, यह कैसी अनहोनी घटना थी कि बच्चे, बूढ़े, जवान, सब की फीकी आंखों में आश्चर्य छिपा हुआ था, जिसने सफाई जैसी साधारण चीज को प्रदर्शनी बना रखा था। बहुत-सी नवयुवतियों को देखकर पारो के मुंह से कई बेतरतीब कोसने निकल गये, वह चाहती थी कि उनमें से कोई जमादार के मुंह में नाली की थोड़ी-सी गन्दगी झोंक दे। मगर वह सब तो उसकी गालियों पर पल्लू से से मुंह छिपा-छिपाकर 'खी, खी' कर रही थीं। वे इस प्रकार शरमा रही थीं कि जैसे उसकी गालियां सुनने की और अधिक इच्छा रखती हैं।

एकाएक उसका हाथ एक मोटे बांस पर जा पड़ा—और एक मोटी-सी गाली उसके पपड़ी जमे खुश्क होठों पर थिरक कर रह गई लेकिन जमादार की एक नई गाली सुनकर वह चौंक-सी पड़ी। उसे अनुभव हुआ कि इस गाली ने उसे नंगा कर दिया है।

हैल्थ ऑफिसर इस समूह की कई गहनाई हुई गोरी लड़कियों को ताक रहा था। बलकीस और रानो ने उसे आकर्षित देखकर पल्लू जान-बूझकर ढलका दिये थे। पारो के दिल में ईर्ष्या की अग्नि दहक उठी। इसी मानसिक व्यथा में उसने अपनी भरी भरी बाहों पर कई उचटती हुई नजरें डालीं और अपने मोटे-मोटे भद्दे कूल्हों को इधर से उधर फेंक दिया।

पिछले कुछ दिनों से उसकी कोठड़ी के सामने वाला खम्भा उसकी आंखों में खटकने लगा था। दिन डूबते ही बिजली का बल्ब जल कर पारो का मुंह चिढ़ाने लगता। रात के अन्धकार में यदि वह कुछ करना-धरना चाहती तो वह बल्ब बाधा बनकर सामने आता। वह ऐसा सिपाही था जिसे घूंस भी न दी जा सकती थी। अभी उस दिन जब वह बाहर निकल कर द्वार बन्द कर रही थी कि सामने क्वार्टर वाली चाची ने उसे देख लिया और वह लौट आई अपनी कोठड़ी में इसी घबराहट के मारे।

"पारो, तू अभी गई नहीं?" उसकी मां ने पूछा।

"नहीं!" वह हाँफते हुए बोली।

"अरी, वह बाबू जी इन्तजार करते होंगे।"

"अहं।... ..आज कितनी सर्दी है......।

"दो कदम का तो फासला है।"

"मेरे बदन में दर्द हो रहा है।"

दोनों की बात सुनकर रज्जू किलबिला उठा। उसे भूख लगी थी। मां के अनुराध की चिन्ता न करके वह वहीं लेट गई।' उसकी सांस बहुत तेज चल रही थी। असके वक्ष घायल कबूतर के समान फड़क रहा था। चाची ने उसे अवश्य देख लिया होगा। उसे कुछ न कुछ शक भी जरूर गुजरा होगा। उसे चले जाना चाहिये था। लौट कर उसने अपने आप को खुद ही पकड़वा दिया।

किवाड़ की दरार से, उसकी अंधेरी कोठड़ी में बिजली का प्रकाश छन-छनकर आ रहा था। वही गोल गोल बल्ब उसका मुंह चिढ़ा रहा था। उसका दिल मचल-सा गया कि एक ढेला ऐसा ताककर बल्ब पर मारे कि टुकड़े-टुकड़े हो जाए।

वह गन्दगी छोड़ना चाहती थी परन्तु छोड़ नहीं सकती थी। पति किसी दुकान में चालीस रुपये की नौकरी करता था, उससे बनता ही क्या था। भाइयों और मां का पेट भरना था और फिर अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखनी थी। उसे गन्दगी का चस्का-सा पड़ गया था।

उसका भाई कहता, "पारो, तू अपनी तन्दुरुस्ती बनाये रख। जितना गोश्त होगा उतना ही दाम लगेगा।"

पारो उसकी कसाई की-सी दूरदर्शिता पर मुस्करा देती और घर पर जो कुछ होता उस पर पिल पड़ती। नया-नया बाजरा चला था। पांच मोटी मोटी रोटियां खाकर भी वह अभी भूखी थी। उसका बेटा खटोले पर बैठा 'चींग चींग' कर बाजरे की रोटी खा रहा था। वह खेल ज्यादा रहा था और खा कम रहा था। वह चाहता था कि यह रोटी कभी खत्म ही न हो—पारो ने वह रोटी भी छीन ली। बेटे की आंखों से आंसू उबल रहे थे और पारो की बत्तीसी निकल पड़ती थी।

पारो के शरीर पर मांस थपा हुआ था। कहीं से कोई हड्डी दिखाई नहीं देती थी, परन्तु इसके बावजूद वह भद्दी नहीं थी। रामू हलवाई उसे 'गबदी' कहा करता था और वह यह समझ कर कि उसकी तन्दुरुस्ती की तारीफ हुई है, फूली न समाती। उसे रामू बहुत अच्छा लगता। उसे देखकर पास पड़ौस की स्त्रियां जलतीं। कई कहतीं कि हराम का खा-खाकर मोटी हुई जा रही है। परन्तु पिछले कई महीनों से उस पर बेतहाशा मांस चढ़ गया था। इसी लिये उसका हरा सूट कई जगहों पर बहुत तग होकर मसक गया था।

उसका बेटा बराबर उसे कोसे जा रहा था। वह सोचने लगी कि यदि वह न रही तो उसे दोनों वक्त रोटी कौन खिलायेगा। भीख से भी तो पेट नहीं भर सकता। फिर उसे ख्याल आया कि वह उसे समझाए कि वह उसकी मां है, लेकिन फिर उसने सोचा वह है ही कितना।

उसका अन्धा बाप बीड़ी का धुआं छोड़ रहा था और मां उबाल को रोकने के लिये दाल की देगची पर रकाबी रख रही थी।

कुछ उसी तरह पारो भी माता-पिता के प्रति अपनी घृणा रोकती। उसकी मां जान-बूझकर उसे बाबू लोगों के पास भेजती। उसका हृदय निथरे हुए जल के समान शफाफ था, जिसकी सतह पर प्रेम की लहरें भी खेल सकती थीं। परन्तु प्राय: कोई झक्खड़ उसे गन्दला देता और वह घृणा से खेलने लगती। गन्दगी से जूझने लगती। न बाप के कान पर जूं रेंगती न मां के माथे पर बल आता।

"तड़ाक!" पोते की गाल पर दादी का चांटा पड़ा। वह बिलबिला उठी। वह अपने सारे कोसने भूल गया। पारो ने जब उसकी हथेली पर एक पैसा रखा तो वह इतना प्रसन्न हो गया जैसे कभी रोया ही नहीं।

गत एक दो मास से वह परेशान परेशान सी रहने लगी थी। उसके जीवन के घिनौने पक्ष से उसके पड़ोसी परिचित होने लगे थे। वह गन्दगी से खेलना चाहती थी परन्तु यह नहीं चाहती थी कि कोई दूसरा उस पर गन्दगी उछाले। बहुत-सी मुंहफट बूढ़ियों ने उसके मुंह पर उसे 'कमीनी वैश्या' कहा। फाकों से निढाल, बहुत-सी नवयुवतियों ने उसे 'आवारा' कहा। हरीस निगाहों से तकते हुए गुजर जाने वाले बहुत से पुरुषों ने उसे 'बदचलन' कहा, जैसे वे बूढ़ियां और वे जवान और ये हरीस मर्द कमीनगी, बदचलनी, आवारगी और वेश्यावृत्ति की तमाम चटोरता पहचाने हुए हैं। रात के अन्धकार में बाबू लोग उसके शरीर से खेलते हैं और दिन की रोशनी में संसार की जिभा उसके शरीर को छेड़ती है।

इसी मानसिक व्यथा और क्लेश ने उसके जीवन की शांति और सन्तोष को फना कर दिया था। अपने हृदय के किसी सुनसान में वह पवित्रता का दीपक जलाने का असफल प्रयत्न करती रही।

मंगलवार की रात को उसने बताशों का दोना उठाया तो उसके हाथ कांपने लगे। उसके शरीर का रूआं रूआं थरथराने लगा। वह तेजी से मन्दिर

की ओर लपकी। वह पारो जो कभी दीवार के साये से भी डर जाती थी, आज कुत्तों के भौंकने से भी न घबराई। आज वह अपनी गन्दगी फेंकने जा रही थी। उसे अपने व्यतीत की समस्त घिनौनी रेखाओं को मिटाना था, किन्तु मन्दिर के द्वार पर वह ठिठक कर खड़ी हो गई। बड़ी बूढ़ियों से उसने सुन रखा था कि एक बदचलन स्त्री मन्दिर के द्वार पर जल कर मर गई थी। क्या वह भी जल जाएगी ?

एक भिखारिन को बताशे देकर वह उल्टे पांव लौट आई। वह मरना नहीं चाहती थी।

उस समय वह चारपाई पर इस प्रकार औंधी पड़ी हुई थी जैसे उसने संसार को पछाड़ लिया हो। दस बहुत देर के बज चुके थे मगर वह धूप में ही लेटी रही। सूर्य की किरणें सुइयों के समान उसके शरीर में चुभ रही थीं। कई स्त्रियां उसे घूरती हुई, नाक-भौं सिकोड़ती उसके पास से गुजर गईं। उसकी इच्छा हुई वह जगह जगह से मसका हुआ अपना हरा सूट पहन ले।

परन्तु उसका अन्तर तो टूट-टूट गया था। वह चारपाई पर बैठकर आंखें मलने लगी तो उनमें पानी भर आया परन्तु बलकीस की आंखें तो सचमुच ही डबडबायी हुई थीं।

वह दो रुपये मांगने आई थी, उसे संसार ने पछाड़ दिया था। उसी पारो से, जिसकी वह बुराइयां करती थी, वह भीख मांगने आई थी। वह आत्म-सम्मान को दफन करना सीख चुकी थी। उसकी विनती में एक झिझक थी, परन्तु पारो की सहायता में बेबाकी थी, इसलिए गर्व की एक हल्की-सी रेखा पारो के ललाट पर फैल गई।

उसी दिन की तरह आज भी मेहतर-मेहतरानियों को जमादार गालियां सुना रहा था। परन्तु आज पहले की तरह भीड़ न थी। लोग सफाई के आदी हो चुके थे। जब उसकी कोठड़ी वाली नाली की बारी आई तो वह बेचैन हो गई।

"जमादार साहब, यह सफाई किस लिए हो रही है ?" उसने पूछा।

"इस गन्दगी से जहरीले कीड़े जन्म लेते हैं।"

"पर इस सफाई से सरकार को क्या लाभ है ?"

"पब्लिक की तन्दुरुस्ती।" जमादार ने उत्तर-स्वरूप कहा और फिर सामने

खड़ी मेहतरानी को एक गलीज गाली देकर दूसरी नाली साफ करने के लिए कहा।

पारो समझ गई कि जमादार चाहता है कि बलकीस भी उसकी तरह हो जाये—बलकीस दो रुपये के नोट को हाथ में मसलती हुई निकल गई—और जमादार की आंखें पारो के शरीर में उलझ कर रह गईं।



खाली गोद

भगवत्प्रसाद साठे



पहले महीने की सत्तरह तारीख को लता एक सूखे पेड़ के ठुंठ से लिपटी हुई अपनी चोटी ऊंची किये उसे छाया कर रही थी। उस के गहरे हरे रंग के चौड़े पत्ते हवा में झोंके खा रहे थे। गुमनाम पेड़ का ठुंठ लिपटी हुई छायादार पत्तों भरी लता पर भले ही गौरव कर रहा हो, परन्तु लता की बेबसी, उसका गौरव, सरस मीठे फलों के साथ गोद भरने की लालसा तो मर गई थी। मुझे देख कर रोना आ गया, आंखें बंद हो गईं, और मुंह फेर कर दुखी होने के सिवा मेरे लिये और कोई चारा न रहा।

बरसों पहले वह कोमल अनजान लता सामने आती दिखाई देती थी। मैं जानता था, प्रकृति बदलती नहीं। सहज स्वभाव से ही लतायें अपने पास के जाने पहचाने वृक्षों पर चढ़ जाती हैं, उन्हीं के साथ लिपट कर धूप से बचती हैं। छाया में संरक्षण पाती हैं, अपना जीवन उनमें मिला कर जीती हैं, खो जाती हैं, और अन्त में मुरझा जाती हैं। परन्तु वह लता बड़े पानीदार रमणीय स्थान में उगी थी। उसके चारों ओर घने छायादार फूलों से लदे हुए फलदार वृक्ष थे। फिर भी उसे अपनी ओर लपकते देख कर मुझ में धारणा हुई थी, कि लता बढ़ने पर, युवावस्था में आने पर जरूर मेरी ओर आयेगी, मेरे साथ लिपट कर मुझ में हरियाली भरेगी। मेरे तने से लेकर चोटी तक नरम नरम पत्तियां बिखेरेगी। इसके छोटे छोटे फूल खिलेंगे, और हवा में उनकी महक दूसरे वृक्षों के लिये रश्क पैदा करेगी। मैं ऊपर से झांकता रहा, प्रतीक्षा करता रहा।

मैं चालीस फुट ऊंचा चीड़ का पेड़। जड़ से लेकर तीस फुट तक मेरी टहनियां और पत्ते काट दिये गये। धूप और वर्षा से बचने के लिये ढोर चराने वाले चरवाहों ने मेरी तीस फुट की लम्बाई नंगी करके अपने लिये पास के चौगान

में कोठे छत लिये थे। चरवाहे मेरी उस दस फुट की चोटी की छाया में सत्तियां तोड़ तोड़ कर उन के बीज खाते थे। उन बीजों में कश्मीर के बादाम और केरल के काजू की सफेदी थी, वैसी ही बलवर्द्धक शक्ति भी उन में भरी हुई थी, परन्तु वे बीज काली कलूटी सत्तियों के गोलों में बंद रहते थे, और उनके गुण को चरवाहों के सिवा दूसरा कोई नहीं जानता था।

उधर खेत की आड़ में हीरमिजर के फूल हंस रहे थे। उन की सफेद पंखुड़ियां थीं, और बीच में सोने की गोल कटोरियां जड़ी हुई थीं। अपनी सुन्दरता पर वे इतरा रहे थे, मुझे चिढ़ा रहे थे। परन्तु मैं आशान्वित था, कि लता में हीरमिजर से भी अधिक सुन्दर फूल खिलेंगे। वे फूल रंग राग से शुद्ध और पवित्र होंगे। उनकी भीनी भीनी महक सारे वातावरण में उत्साह और उमंग भर देगी। नया जीवन होगा, जो जीवन से सरशार होकर लहलहायेगा, खिलखिलायेगा।

मेरी प्रतीक्षा सफल हुई। लता के लम्बे कोमल शरीर में छोटी छोटी पत्तियां फूटीं। वे पत्तियां गहरी हरियाली पकड़ने लगीं। फिर छोटे छोटे फूल खिले, और उन से लता के अंग उभर कर सजावट सजाने लगे, महक इधर उधर फैलने लगी। अब मैं समझने लगा, लता बढ़ कर इधर आ जायेगी।

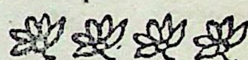
लता बढ़ने लगी, फलों के साथ अपनी खाली गोद भरने की उस की लालसा भी बढ़ने लगी। मैंने समझा, वह इधर बढ़ रही है। परन्तु वह मेरे तने के पास से रेंगती हुई दूसरी ओर बढ़ती गई। मैं समझ गया लता लाल रुखसारों वाले रत्नागिरी के हापुस आमों के साथ अपनी गोद भरना चाहती है। कदाचित बसई के लाल केले, लखनऊ के दसहरी, नागपुर के संतरे, महाराष्ट्र के नारियल और कश्मीर के सेब और बग्गूगोशे लता की गोद भरेंगे। मैं खड़ा देखता रहा। कटी हुई खूंटियों से भरा हुआ मेरा खुरदरा तना शायद कोमल लता को चढ़ने के साथ साथ जख्मी कर दे, अंग अंग का रस रिसने लगे। उस की लोलुपता के साथ मुझे सहानुभूति होने लगी, मैं अपने आप में हीनता अनुभव करने लगा, क्योंकि मेरे पास सत्तियों के काले गोलों के सिवा उसकी गोद भरने के लिये दूसरा कोई सुन्दर फल नहीं था।

परन्तु ठुंठ देख कर मुझे अचम्भा भी हुआ, और क्लेश भी। उसमें न रस है, न सौन्दर्य परन्तु लता स्वयं उसकी संरक्षक बनी हुई है, उस के जीवन में अपना जीवन मिला चुकी है उस में खो चुकी है, खाली गोद भरने की उस की लालसा मर चुकी है।



किसी से न कहना

चंचल शर्मा



दोनों ओर की रस्सियों को दोनों हाथों में कस कर पकड़ा, एक पांव लकड़ी की गद्दी पर रखा और चारों ओर नजरें घुमाईं, कोई भी नहीं था। सारा बाग सूना पड़ा था। सुबह जल्दी आने का कारण भी यही था कि चुपके चुपके झूला झूलने का चाव पूरा कर लूंगा, और किसी को पता भी न चलेगा। छुटपन में झूला झूलने का एक अलग ही मजा था। सभी बच्चे इकट्ठे होते और शाम को आमों के बाग में चले जाते। लड़के लड़कियां गीत गाते, झूला-झूलते और आम चूसते थे। इस बाग के आम भी बड़े मीठे थे। बाग के माली हमारी बड़ी चौकसी रखते। हमारे ही पीछे घूमते रहते। फिर भी इक्का-दुक्का गिरा हुआ आम यदि हम उठा लेते तो वह कुछ न कहते। हां, वृक्ष पर पत्थर मारना मना था, फिर भी कभी कभार माली की नज़र बचा कर हम पत्थर मार कर आम गिरा देते और माली का ध्यान दिला कर कहते—"चाचा, यह आम गिरा पड़ा है ले लें?" और वह बड़ी सादगी से कहता, "अच्छा ले लो, पर देखो पत्थर मत मारना, नहीं तो यह हमारा डण्डा राम देखा है न"! और फिर हम डरते हुए कहते, 'अरे नहीं चाचा, हम पत्थर मार कर सिर फोड़ेंगे क्या"। और फिर कहकहा लगा देते। आज वह सब याद आ रहा था। बचपन की बातें-हंसी खेल और सब से अधिक गांव में आकर झूला-झूलने का चाव।

कम्मो का ध्यान आते ही मैं सिहर उठता हूं। छोटी-सी गुड़िया कानों में कर्णफूल, घुंघराले बाल, भोला मुखड़ा, हाथों में दो आम लिए चूसती, उछलती-कूदती जब हमारे मध्य आ जाती तो सारा बाग चहक उठता, "हम झूला-झूलेंगे, छोड़ दो अब हमारी बारी है"। सब झूले से हट जाते। कम्मो झूले पर

जा बैठती और मुझ से कहती, "चलो, हमें झुलाओ।" और मैं आगे बढ़ कर झूले को धक्का दे देता। झूला झूलते वह किलकारियां मारती, और हम सब हंस देते, "क्यों कम्मो, मज़ा आ रहा है ?" "हां, बहुत मज़ा आ रहा है।" कभी कम्मो हम से लड़ पड़ती थी। खूब जी भर कर गालियां देती और किसी का साहस ही न होता कि कुछ कह सके और वह स्वयं ही फूट कर रो पड़ती। फिर वह घर चली जाती, थोड़ी दूर तक उसे जाते सब देखते और फिर वह ठोकर खा कर गिर पड़ती। सब का जी चाहता कि दौड़कर उसे उठा दें, पर किसी का साहस न होता। मैं ही अकेला ऐसा था जो भागता और जा कर उसे उठाता। तब वह एक नज़र गुस्से में पीछे मुड़ कर सब पर डालती और फिर मुझे देख कर मुस्करा देती, "हम तुम से बहुत खुश हैं। राजू, किसी से कहना नहीं, हम तुम से ब्याह करेंगे।" और मैं बहुत खुश हो जाता और झट कह देता, अरे, नहीं मैं किसी से नहीं कहूंगा। और मैंने कभी किसी से नहीं कहा कि कम्मो ने मुझे ब्याह का बचन दिया है। एक बार नहीं, कितनी ही बार ठोकर खा कर गिरी है, और कितनी ही बार मैंने सम्भाला है, और कितनी बार उसने मुझ पर अपने वचनों की कृतज्ञता जताई है। आज झूले पर पांव रखते ही मुझे सब याद आ रहा था। मैंने झूले की डोरी को खींचा और हुलारा लिया। झूला हवा में लहरा रहा था और मैं हुलारे ले रहा था। धीरे से हवा ने मेरे कानों में कहा-कहो, मज़ा आ रहा है। धीरे से मैंने उत्तर दिया, हां, बहुत मज़ा आ रहा है। मेरा शरीर झूले पर डोल रहा था और फिर मुझे याद आया वह दिन, जब मैं फौज में भरती हुआ था। उस दिन कम्मो मुझे बाग में मिली थी। कुछ उदास थी। उदासी में वह बड़ी भली लगती थी। अब उसमें बचपन की चंचलता न थी, यौवन का ठहराव था। अल्हड़ता ने गम्भीरता का बाना पहन लिया था। मैं बाग में बैठा था। वह धीरे से चली आई और आते ही कहने लगी, "हमारी शादी हो रही है, राजू। मैं बिटर-बिटर उसकी ओर ताकने लगा। इस तरह क्यों ताकते हो, मैं तो तुम्हें बताने आई हूं, मेरी शादी हो रही है।" "कहां ?" मेरे मुंह से निकला। "वह दूसरे गांव के नम्बरदार है न।" कम्मो ने कहा।

'ओह, मैं समझा," पर मैं कह न सका। "आओगे न मेरे ब्याह पर" ? "हां हां, जरूर, आऊँगा, आऊँगा क्यों नहीं ?" परन्तु मैं गया नहीं। मैं भरती के दफ्तर जा पहुंचा और फिर मुझे शहर भेज दिया गया—ट्रेनिंग के लिए।

हवा ने फिर कान में फुसफसाया, "कहो, जहाज पर बैठे पीर की पहाड़ियां पार करते मजा आया था या यहां झूले पर।" मैंने धीरे से उत्तर दिया, "यहां

मजे में हूं।" बात ठीक भी थी पीर की ऊंचाई तो बहुत थी, और दृष्य भी मनोरंजक थे। नीचे सब्जा और बल खाती नदियां। छोटे-छोटे कच्चे मकान और फिर जहाज बादलों में डूब गया। एक बार तो दिल हिल गया कि अब बचना कहां, बड़ा रोमांचकारी क्षण था। ट्रेनिंग लेने के पश्चात हमारी यूनिट कश्मीर सीमा पर चल गई थी और वहां पहाड़ों की दुनिया में मैं बहुत खुश हुआ था। फौज के अनुशासित जीवन और प्रकृति की मादकता ने हृदय की पीड़ा पर फाह रख दिया। और मैं भूल गया कि आम के बाग में एक कांटा चुभा था। मगर आज झूले की हवा ने एक बार वही पीड़ा लौटा दी थी। कम्मो सामने थी। वही लाल लंहगा पहने ताली पीटती, उछलती जोर-जोर "टीलमटीलों, पहाड़ियों" कहती। पांव की झांझरें उस के सुरीले गले के साथ-साथ ताल दे रही थीं और फिर चारों ओर से आवाजें आने लगीं --"टीलमटीलो पहाड़ियों" और सभी बच्चे छिपी जगहों से बाहर आने लगे। कम्मो की पार्टी और जग्गू की पार्टी में झगड़ा हो गया। पहली बारी किस की। कम्मो जोर दे रही थी, "मेरी" और जग्गू कहता था-"नहीं, रोज पहली बारी तुम्हारी होती है। आज जग्गू की होगी।" कम्मो रोने लगी, "हम नहीं खेलेंगे। जाओ, तुम सब रोन्दू हो।" और फिर गाल फुला कर वह चल दी। थोड़ी दूर जाकर उसे ठोकर लगी और गिर गई। 'कम्मो' जोर से मेरे मुँह से निकला और मेरे हाथों से झूले की रस्सियां छूट गईं। अनजाने में मैंने दौड़ने के लिए कदम बढ़ाया और धड़ाम से झूले पर से नीचे आ गिरा। झूला आहिस्ता हो चुका था। इसलिए चोट तो ज्यादा नहीं आई। पर फिर भी दिल धक धक कर रहा था। अचम्भा। कम्मो मुझे उठा रही थी। उसकी आंखें सूनी थी। वह सफेद साड़ी पहने थी। मैं हैरान उसे देख रहा था। वह बदल गई थी। बहुत बदल गई थी। उसकी आंखों की चमक धुन्धली थी। मैंने उठते हुए पूछा, "तुम ससुराल से कब आई कम्मो।" "मैं ससुराल में गई ही कब थी। और तुम मेरे ब्याह पर नहीं आये थे न, इस लिए अपशकुन हुआ। मैं केवल आठ दिन सुहागन रही।" 'कम्मो,'' मैं कांप गया था। ओह, मैं कितना पापी था। मैंने कम्मो का अपशकुन मनाया। मैं उसके ब्याह पर नहीं गया और वह विधवा हो गई। उसके ससुराल वालों ने उसे कुलच्छनी समझा और अपने घर भी नहीं जाने दिया।

कम्मो चली गयी। धीरे-धीरे आम के वृक्षों की ओट से वह मेरी नजरों से ओझल हो गई। मुझे एक विचार आया—और मैं भागता हुआ कम्मो के घर जा पहुँचा। बाहर खटिया पर कम्मो का बापू बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। मुझे देखते ही वह खटिया पर सरक गया, "आओ बेटा राजू, बहुत दिनों पीछे दिखाई दिये। बैठो-बैठो।" मैं बैठ गया।

"यह क्या हो गया, चाचा ?" मैंने पूछा।

"जो दुर्गा को मन्जूर था बेटा, इस में किसी का क्या दोष। कम्मो बिचारी का भाग खोटा था।" कहते-कहते चाचा की आंखें छलछला गईं और आंसू उस की गालों की झुर्रियों पर लुढ़कने लगे। "अब क्या होगा चाचा ?" मैं भी रुआंसा हो उठा था। "क्या होगा दुर्गा ही जानती है।" खांसता हुआ वह बोल रहा था-बीच-बीच में सांस लेने को रुक जाता।

"जब तक मैं जीता हूँ किसी तरह गाड़ी घिसट रही है। पर मेरे बाद कुछ समझ में नहीं आता। क्या कहूँ क्या सोचूँ", वह फिर रो उठा।

"नहीं, चाचा, तुम चिन्ता मत करो। धीरज रखो चाचा, धीरज से सब ठीक हो जाता है।" मैं जो कहना चाहता था कह न पा रहा था—"चाचा, कम्मो तो अभी छोटी है" जीवन बहुत लम्बा है यदि तुम चाहो तो ...चाचा हम बचपन में एक दूसरे को बहुत चाहते थे। चाचा, कम्मो बचपन में मुझे कहा करती थी।" चाचा हैरान मेरी ओर ऐसे ताक रहा था, मानो मेरे चेहरे पर पढ़ कर कुछ समझना चाहता हो।

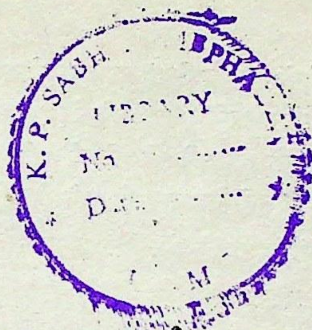
"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कैसे हो सकता है ? युगों से चलता आ रहा मेरा निष्कलंक खानदान कम्मो के कारण कलंकित हो जाये।"

मैंने चाचा को समझाया। कम्मो के जीवन के लिए, उस के सुख के लिए। अपनी बच्ची का विचार करके रूढ़ियों की परम्परा के अधीन बूढ़ा मान ही गया। मुझे ढारस मिली। मैं कम्मो का जीवन उसे फिर से लौटा सकूंगा। मगर कम्मो हमारी सब बातें सुन रही थी। वह एक दम बाहर आ गई। उसके मुंह पर तेज था। "बापू, ऐसा नहीं होगा, कभी नहीं, मेरे कारण तुम्हारे खानदान को तुम्हारे नाम को दाग़ नहीं लगेगा।"

मैं बौखला गया। यह क्या हो रहा है। यह कम्मो है, मुझे पूर्ण विश्वास था, कम्मो मेरा सहारा पा कर खिल उठेगी, मगर बचपन में हमेशा मेरे सहारे को चाहने वाली कम्मो आज मुझ से दूर रहना चाहती थी। "मगर-कम्मो, तुम तो मुझे कहती थी", मैंने कहा।

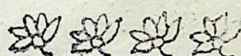
"वे सब बचपन के खिलवाड़ थे राजू, तुम जाओ। दूर चले जाओ, बहुत दूर चले जाओ।" कहती-कहती वह धड़ाम से गिर पड़ी। बापू ने दौड़ कर उसे गोदी में ले लिया। बेहोशी में भी वह बड़बड़ा रही थी, "किसी से कहना नहीं राजू। किसी से कहना नहीं।" मैं लड़खड़ाते कदमों से मुड़ा और अपने बोझल शरीर को लिये ड्योढ़ी से बाहर आ गया।





तीसरे कालम में छपी एक तस्वीर

नरेन्द्र खजूरिया



"......वही बात हुई। सब किए-कराए पर जैसे पानी फिरने लगा। यह तो हमने नहीं सोचा था कि बिना किसी विघ्न बाधा के हमारी 'नवकलाकार मण्डली' का पहला नाटक, जिसे हम सब अपना 'पहला शाहकार' कहा करते थे, सफल हो जाएगा, परन्तु हमें यह भी गुमान नहीं था कि हरीश जैसा घुन्ना व्यक्ति बीच में यों अड़ंगा डाल देगा। हमने तो उसे बस योंही अपने साथ रखा हुआ था, वरना नाटक के साथ उसका दूर का भी वास्ता नहीं था।

जैसा कि हमारी नवकलाकार मण्डली' के नाम से प्रकट है, हम सभी नौसिखिए थे। साहित्यिक भाषा में जिन्हें 'कल के कलाकार' और फिल्मी जबान में 'नए चेहरे' कहते हैं। मगर हमारा विश्वास था कि नाट्य-कला के क्षेत्र में अगला कल हमारा है।

१९६२ वर्ष के वे अन्तिम दिन थे। चीनी आक्रमण के घाव अभी हमारे सीनों पर ताजे थे। कुछ कर के दिखाने की भावना हम आठ-दस बेकारों के मन में भी मचल उठी। हमने सोचा कि कुछ तो हमें भी करना चाहिए। आखिर, हम इस निर्णय पर पहुंचे कि और कुछ नहीं तो एक नाटक ही खेला जाए। बैठे-बैठे नाटक मण्डली का नामकरण भी हो गया—नवकलाकार मण्डली। चीनी आक्रमण की पृष्ठ-भूमि पर नाटक की कथा-वस्तु का ताना-बाना बुनने के लिए बैठकें प्रारम्भ हो गईं। करामात ही थी कि आठ-दस दिन में हमने पर्दा उठाने लायक नाटक लिख लिया। अब हमारे सामने दो समस्याएं थीं, थोड़े-बहुत पैसों का प्रबन्ध और रिहर्सल के लिए स्थान। ये दोनों वस्तुएं ऐसी थीं जिनका सच्चे कलाकारों के पास प्रायः अभाव होता है, परन्तु हमारी टोली में हरीश एक ऐसा व्यक्ति भी था जो कलाकारों की श्रेणी में नहीं आता था,

अत: ये दोनों जिम्मेदारियां उसने सहर्ष अपने ऊपर ले लीं। अपने ही घर में एक कमरा उसने हमें रिहर्सल के लिए दे दिया और वादा किया कि आठ-दस दिन में वह दो सौ रुपये की टिकटें भी बेच देगा। हरीश, जिसे हमने अपने बराबर कभी नहीं समझा। जिसकी गिनती हम कलाकारों में नहीं वरन् अपने प्रशंसकों में ही करते थे, आज उसने वह कर दिखाया जिस की किसी को उम्मीद न थी। खुशी में हमने उसे कंधों पर उठा लिया, 'हरीश राजा, जिन्दाबाद! राजा हरिश्चन्द्र जिन्दाबाद!'

विधिवत् रिहर्सल प्रारम्भ करने से पूर्व ड्रामा के पार्ट बंटने थे। वैसे तो हमने पहले से ही अपनी-अपनी पसंद के पार्ट चुन लिए थे। हमारे पास कलाकार की कला को मापने का एक पैमाना था—कला के लिए कलाकार का आत्म-त्याग। इस हिसाब से खन्ना हम सब में से बढ़-चढ़ कर था। वह तीन बार कला के लिए घर से भाग कर बम्बई अभिनेता बनने के लिए गया था। अब जम्मू में रहते हुए भी वह अभिनेता ही दिखाई देता था। अपनी असली भवें उसने कब की मुंड़वा दी थीं। अब वहां केवल आइ-ब्रो पैंसिल से बारीक-बारीक चन्द्रकार रेखाएं ही खींचता था। यह उसका दावा था कि हमारे इस शहर में 'टाइट पैंट' का फैशन उसने प्रचलित किया था। इन सभी गुणों से स्पष्ट था कि हमारे नाटक में हीरो की भूमिका खन्ना ने ही निभानी है। परन्तु इस बात की खानापुरी लोकतन्त्रीय ढंग से करना आवश्यक था, अत: नवकलाकार मण्डली की इस सम्बन्ध में एक बैठक हुई। मण्डली के मन्त्री ने, जो अपने पतले गले और जनाना नख-शिख के कारण ड्रामा की हीरोइन के चुनाव में अपने आपको बिला मुकाबिला कामयाब उम्मीदवार समझता था, और पतली आवाज में कहा, "हमारे इस नाटक में नायक की भूमिका किसके जिम्मे होगी?"

हम सबने खन्ना की ओर देखा। उसने जैसे एक 'क्लोजअप' लिया। आंखों को तिरछा करके बाएं हाथ के अंगूठे को बड़ी अदा से होंठों पर फेरा। सहसा हमें लगा पल क्षण में नायक जैसे खलनायक की मुद्रा में आ गया। उसके होंठ अंगूठे-भर खुले हुए थे। हमने जैसे हरीश के बोल सुने ही नहीं थे।

खन्ना खनका, "क्या मतलब?"

हरीश ने उत्तर दिया, "यही कि इस नाटक में नायक की भूमिका मैं करूंगा।"

"किस बल-बूते पर?"

"मुझे हीरो का रोल पसंद है। अपने देश की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते

मृत्यु को प्राप्त होना । वाह, वाह ! कितना उच्च-आदर्श है ।" हरीश में जैसे नाटक के नायक की आत्मा प्रवेश कर गई थी ।

हम सब हैरान-परेशान दोनों की ओर टुक-टुक देख रहे थे। खन्ना इस अनहोनी घटना के धक्के से सम्हल नहीं पा रहा था। ऐसे समय उसे सिगरेट का बड़ा सहारा होता है। सिगरेट का कश लगा कर वह बोला, "मिस्टर हरीश, इस ड्रामे के हीरो की मौत मरने के लिए आर्टिस्ट को उस्तादों की मार खानी पड़ती है। स्टेज पर माथा घिसना पड़ता है। कला कोई कलाकंद नहीं, जिसे हर कोई खा-पचा लेगा। नकली गोलियां खाकर भी अभिनय इस तरह करना होगा जैसे 'धायं-धायं' असली गोलियां सीने पर लग रही हों।" अपनी रान पर जोर से हाथ मार कर खन्ना ने जैसे धायं-धायं गोली चलने का 'इफेक्ट' दिया।

हरीश कह रहा था, "ऐसा करना कोई कठिन नहीं। अभिनय करते समय यह ध्यान ही क्यों रहे कि गोलियां असली हैं या नकली। हमारे सामने नाटक के नायक का ऊँचा आदर्श है।"

खन्ना क्रोध में कांप कर बोला, "हरीश, यह आदर्श किराए पर लाए हुए तख्तों से बनी स्टेज पर नहीं, देश की सीमा पर, रेत की बोरियों के बीच बने मोर्चे पर शोभा देते हैं।"

हरीश मानो आज वह पहला हरीश नहीं था, बोला," काश ! हमारी स्टेज असली मोर्चा होती। मैं तब भी नाटक के नायक की पवित्र भावनाओं को मूर्त रूप देता। अपने देश की हिफ़ाज़त करता हुआ सदा के लिए इसी मिट्टी में सो जाता।"

सिगरेट फेंककर खन्ना खड़ा हो गया, "ठीक है, यदि हीरो का रोल तुमने ही करना है तो फिर हम ड्रामा देखने ही आएँगे...यदि ड्रामा हुआ तो...।"

खन्ना के इस तरह चले जाने का अर्थ था कि उसके साथ ही हमारे नवकला-कार मण्डली के मन्त्री उर्फ ड्रामा की हीरोइन भी भर्र से उड़ जाती।

दो साथियों ने बड़ी कठिनाई से खन्ना को रोका। उसे जैसे अपनी कला प्रकट करने का सुअवसर मिल गया। उसने वो फर्राटेदार डॉयलाग बोलना शुरू किए कि हमने समझ लिया कि हमारा नाटक आज ही समाप्त हो जाएगा।

मैंने हरीश को बाहर ले जा कर कहा, "भाई मेरे, तुम जानते ही हो अगर खन्ना रूठकर चला गया तो शो के दिन हमारी स्टेज पर बिजली नहीं जग सकती.. और हमारे शहर में पत्थरों की भी कमी नहीं है। तू हीरो का रोल खन्ना को ही करने दे।"

हरीश ने जैसे कड़वा घूंट पी लिया, बोला, "ठीक है, इस नाटक में खन्ना ही हीरो का रोल करे, हम कभी न कभी, किसी न किसी स्टेज पर मन की साध पूरी कर ही लेंगे।"

मैंने कहा, "अगर तू भी खन्ना की तरह रूठ कर चला गया तब भी हमारा नाटक नहीं हो पाएगा। रिहर्सल के लिए हमारे पास अन्य स्थान नहीं है।... तुमने दो सौ रुपये की टिकटें बेच देने का जिम्मा भी लिया है।"

वह मुस्कराकर शान्त भाव से बोला, "इस का अर्थ यह नहीं कि मैं तुम लोगों को सहयोग नहीं दूंगा।"......"

३० अक्तूबर, १९६५

मेरे सामने आज का समाचार पत्र है। पहले पृष्ठ के तीसरे कॉलम में एक तस्वीर छपी है, जिसके नीचे लिखा है—चविण्डा का हीरो।

मेरी छोटी बच्ची मेरे पास चुपचाप खड़ी है। उसके हाथ में पकड़ी हुई कैंची की 'किरच,किरच' मुझे सुनाई दे रही है।

"पिता जी !"

"बेटी, अभी नहीं।"

वह फिर चुपचाप खड़ी हो जाती है। उसके मन की प्रतिक्रिया जैसे कैंची की इस 'किरच, किरच' के रूप में प्रकट हो रही हो। जब से समाचार पत्रों में देश पर बलिदान होने वाले वीरों के चित्र छप रहे हैं, वह लगातार उन्हें काट-काटकर अपनी एलबम पर लगाती जा रही है। आज, अखबार के पहले पृष्ठ के तीसरे कॉलम में जो तस्वीर छपी है, उसे काटने के लिए अब वह तीसरी बार आई है।

"पिता जी।"

"बेटी, अभी ठहरो।" मेरी आंखें जैसे उस चित्र से हटाए नहीं हटतीं।

"पिता जी, अखबार में लिखा है कि यह कैप्टन साहब जम्मू के रहने वाले थे। क्या आप इन्हें नहीं जानते ?"

मैं सोच रहा हूं 'हां' कहूं या 'ना'।

वह कह रही है, "कितनी बहादुरी से यह आखरी सांस तक अपने मोर्चे पर लड़ते रहे। पिता जी, मुझे बताओ न, यह कौन थे ? मैंने अपनी कापी पर लिखना है।"

चित्र पर आंखें गड़ाए हुए मैं कहता हूं, "बेटी, एक बार हमारे साथ मिल कर इन्होंने एक ड्रामा खेला था। उस समय यह सिर्फ हरीश थे। आओ, तुम्हें उस ड्रामा की कहानी सुनाऊँ......।"



काव्य-धारा

× शशि शेखर

× सुभाष भारद्वाज

× पृथ्वीनाथ मधुप

× चन्द्रकांत जोशी

× मनसाराम शर्मा 'चंचल'

× ओंकारसिंह 'आवारा'

× सुतीक्ष्ण कुमार 'आनदम्'



× मोहन निराश

× शकुन्तला सेठ

× जानकीनाथ कौल 'कमल'

× दुर्गादत्त शास्त्री

× शंकरदास 'पिपासु'

× श्रीवत्स 'विकल'

उत्सुक तुम और यह टूटा रिकॉर्ड

शशि शेखर



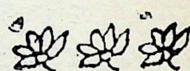
कुछ आड़े-तिरछे मकानों
और संकरी गलियों के बीच
रात एक परेशान चिमगादड़-सी
अपने डैने फड़फड़ा रही है
अपने कमरे की दीवारों को
इस कुरूप शोर से बचाने के लिए
मैंने खिड़की बन्द कर दी है
और पर्दे गिरा दिये हैं।
यह विश्वास कि मेरी खिड़की किसी दिन
उन रंगों में खिल उठेगी
जिन में गुलाब हंसते हैं,

कब का मर चुका है
मेरे लिए खिड़की खोलना
अब एक प्रतीक्षा नहीं
सिर्फ अभ्यास भर है।
मैंने खिड़की बन्द कर दी है
और उस कुरूप शोर को बाहर रोक दिया है
जो चिमगादड़ के डैनों में फड़फड़ाता है।
मैं अपनी बुझ रही सिगरेट का
अंतिम कश ले रहा हूं।

शायद मैं कुछ लिखना चाहता हूं
मगर मैं ऐसा नहीं करता
क्योंकि तुम मेरी हर हरकत को घूर रहे हो
और मैं तुम्हारी आंखों में पढ़ रहा हूं यह उत्सुकता
कि मैं अपने कोट की जेब से निकालूं
वह खूबसूरत कथा
जिस का एक छोर संगमर्मर के फव्वारों से भीगा हो
और दूसरा उस महकती हवा से
जिस पर कोई रहस्यमयी सुन्दरी
मदिर ओठों से कांपता हुआ चुम्बन
उछाल रही हो !
लेकिन मैं अपनी जेब से
दफ्तर, इमारतें, सड़कें, कारखाने
निकाल रहा हूं
और तुम भयभीत हो ।
बाहर डैने फड़फड़ा रहा चिमगादड़
मेरी खिड़की के साथ टकरा रहा है
और मैं सख्त परेशान हूं
मेहरबानी करके मुझे इस बुझ रही सिगरेट के
कुछ और कश लेने दो
और तुम रोजमर्रापन की चादर ओढ़ कर
लेट जाओ !
शायद सपने में तुम फरिश्तों का दिव्य संगीत—
सुनोगे और मुझे क्षमा करोगे ।
(यह और बात है कि मैंने
नगर के बाहर
टूटे पुल के पास
उनकी रीढ़हीन आकृतियों को ठण्ड से ठिठुरते देखा है)
लेट जाओ ।
मुझे तुम्हें यह बताने का साहस आज नहीं रहा
कि जिन्दगी-एक टूटे रिकॉर्ड-सी बेकार है
जो स्वप्न में भी बज नहीं सकता !

परिचय

सुभाष भारद्वाज



ओ, नव आगन्तुक बन्धु !
तुझे मैं परिचय क्या दूं अपना।
क्योंकि
भाषा तो
परिचय देने का
उचित साधन नहीं ।
इस में—
मतलब यह
कि अपने मुंह से
खुद अपना
परिचय देने में
ईमानदार रहना
सम्भव नहीं ।
(यह बात नहीं,
कि मेरा कोई ईमान नहीं ।)
क्योंकि अक्सर
अपने मुंह से
खुद अपना परिचय देने में
लोग बहक जाया करते हैं ।

तो फिर क्या
मुझ को जैसा देख रहे हो
क्या ठीक वैसा ही हूं मैं ?
यह कहना भी ठीक नहीं है ।

इन कपड़ों में ?
जो मैं पहने हुए खड़ा हूं ?
इस कमरे की सज्जा से—
जिसके भीतर आये हो
टेबुल पर पड़ी पुस्तकों से
दीवारों पर
लटकी इन तस्वीरों से ?
फूलदान में सजे हुए इन फूलों से
क्या तुम मुझ को चीन्ह सकोगे
शायद नहीं
मैं तो क्या
मेरा शतांश भी नहीं
क्यों कि कपड़े
जो मैं पहने हुए खड़ा हूं
किसी और के बुने सिले हैं
यह कमरा
मेरा नहीं ।
किराये का है ।

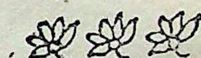
मेज पर पड़ी हुई पुस्तकें
किसी और की लिखी हुई हैं ।
दीवारों पर टंगे हुए ये चित्र
अज्ञात चितेरों के हैं ।
फूलदान में सजे हुए ये फूल
नहीं हैं असली,
ये भी कागज के हैं ।

इस कमरे की हवा—
यह भी बिजली के पंखे की है।
परिचय के लिये
फिर कहीं मिलेंगे
किसी खिली हरयाली में,
बिन पंखे की खुली हवा में।
फिलहाल
हाजिर हूं मैं
हाजिर है
मेरा यह डेकोरेटिड कमरा
आओ बैठो चाय पिएं।



तीन वासन्ती कविताएँ

पृथ्वीनाथ मधुप



(१)
किस ने—
निर्वसन बादाम की शाखों को
पहना दी फूल—कढ़ी—
चुन्नियाँ, साड़ियाँ
हल्के लाल रंग वाली, झीनी ?

कुनकुने धूप-बौछार में नहा—
उग आये चिनार पर—
हंसों के पंजे
भागने लगीं
चलती नदियां

विस्मित हो फाड़ फाड़—
आंखें
यह सब देखती रही
नर्गिस
सारे बदन पर सेन्ट मल
मटक मटक कर
सैर को चली—
हवा।
इस ने मुझे क्या छुआ

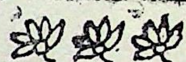
कि अंकुराई—
सुधियां ! सुधियां !! सुधियां !!!

(२)
वसन्त मेरे लिये
शो—केस में सजे
कपड़ों की दूकान के
मोहक रंगों, बेल-बूटों वाले
लटकते कपड़ों, साड़ियों जैसा है
जिन्हें मैं
चाहते हुए भी
खरीद नहीं सकता—
तुम्हारे लिये ।

(३)
चूमूं ये
सधे हाथ
तुम्हारे !
काढ़े—
फूल—पत्ते जिन से ।
अनेकों इत्र छिटका
इस पे
भेंटनी है किसे
हरी रूमाल यह ?



गीत के पहले बोल



चन्द्रकान्त जोशी

गीत के पहले पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल।।

हृदय के मुक्त हुए सब द्वार
उड़ा तब पंछी नभ की ओर
पंख पवन से भी कुछ तेज—
ढूंढते थे प्राणों का छोर।

दूर कुछ देखा उसने चांद,
गया उस नील क्षितिज को फांद,
पुन: उड़ता पंखों को तोल
मिला क्या लेकिन वह अनमोल ?

गीत के पहले पहले बोल।
गये कानों में मधुरस घोल।।

प्रणय के बन्धन फिर फिर बांध
काटता पंछी नभ के फेर।
धरा से जाता जब वह दूर।
मेघ लेते फिर उसको घेर।

सुनाई जाने किस ने टेर ?
धरा पर फिर आया वह लौट,
किन्तु विवश सा वह अनजान
स्वयं ही जाता बेसुध डोल।

गीत के पहले पहले बोल ।
गये कानों में मधुरस घोल ।।

गीत को करुण सिन्धु में बोर,
लिये लाखों के हिय ही खींच ।
स्वप्न देखें दिन को यह प्राण ।
इसी से लोचन रहते मींच ।

सभी इस गायन में हो लीन,
भूल जाते सुख दुख का ज्ञान ।
भरा रहता मन में आलोक
नाचता पंचरंगी सब चोल ।

गीत के पहले पहले बोल
गये कानों में मधुरस घोल ।।

एक रहती है केवल चाह
रुके मत यह गायन की धार ।
लीन हो जायें तन-मन-प्राण—
पले जीवन में निश्छल प्यार ।

आज सपने का चुभता शूल,
वही जाती दृग से जल धार,
जगत की है कुछ ऐसी रीत
डालते हैं सपनों का मोल ।।

गीत के पहले पहले बोल !
गये कानों में मधुरस घोल !!



नीलिमा मेरे गगन की



मनसाराम शर्मा 'चंचल'

नीलिमा मेरे गगन की, खिल रही मृदुहास बन कर।
आज सूने इस जगत् में,
गिन रहा जीवन के दो क्षण।
और आहों में झुलस कर,
जी रहा मैं इक विकल मन।
शून्यता हँसती अकेली, रिक्तता का भास बन कर।
नीलिमा मेरे गगन की, खिल रही मृदुहास बन कर।
ज़िन्दगी के शून्य पथ में,
फूल भी हैं, शूल भी हैं।
औ' विरह की इस सरित् में,
धार भी हैं कूल भी हैं।
सांझ आई जिन्दगी में प्रेम के निश्वास बन कर।
नीलिमा मेरे गगन की, खिल रही मृदुहास बन कर।
कल्पना में था संजोया,
इक नया संसार मैंने।
और सपने में किसी पर,
पा लिया अधिकार मैंने।
पर तभी अश्रु लुटे थे, इक नया उल्लास बन कर।
नीलिमा मेरे गगन की खिल रही मृदुहास बन कर।



मैं आवारा जन्म जन्म का



ओंकार सिंह 'आवारा'

मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया
रूप कभी मेरा मग रोके
कहता, रुको तनिक मुस्काओ
यौवन की बहती सरिता में
पगले पल भर तो बह जाओ
नयन निमन्त्रण देते रहते
प्यार फैलाता अपनी झोली
इन बातों का कभी कदापि
लेकिन मुझ को ध्यान न आया

मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया
चाहा निर्झर की झर झर ने
निज गीतों में बन्दी करना
मन में जलती इस ज्वाला को
ओस कणों से ठंडी करना
इन गीतों की लय में खोकर
चाहा था मैंने रुक जाऊं
दौड़ पड़े सहसा पग मेरे
कब कैसे यह जान न पाया

मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया

सागर की चंचल लहरों ने
उठ गिर कर मेरा मग रोका
नीले जल ने नील गगन का
कितनी बार दिया है धोखा
उसने अपने अन्त स्तल की
सारी निधियां लाकर रख दीं
अभिमानी सागर का मुझ को
मान भरा यह दान न भाया

मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया

लोगों ने उपहास किया
और जगने मुझको कहा दीवाना
उठी अंगुलियां मुझ पर कितनी
पर मेरा मन हार न माना
हार जीत, सुख दुख भी मेरे
सच पूछो पग बांध न पाये
मुझे तो मग की बीहड़ता का
कभी कदापि ध्यान न आया

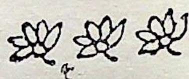
मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया

विस्मृतियों ने मेरे उर में
स्मृतियों के नव दीप जलाये
मग के छाले फूट पड़े फिर
बून्द बून्द टपके मुस्काये
छालों की बहती धारा में
दीपक बुझे बढ़े पग आगे
सूने मन के इस मन्दिर में
फिर कोई भगवान न आया

मैं आवारा जन्म जन्म का
मंज़ल को पहचान न पाया



उलझन



सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्

मैं जब कभी अपना विश्वास
बांटने लगता हूं
कि हो
सब को
विश्वास
मेरे विश्वास पर
तुम रोक देती हो आ कर
मुझ-को इतना
कहकर
कि क्यों
सब को
आश्वासन देते हो
निज विश्वास का
कल तुम्हारा यह आश्वासन
रह जाए यदि
केवल मिथ्या बन कर
कालख मल लोगे अपने मुंह पर
अथवा
गड़ जाओगे
गहन
अंधकार में ?

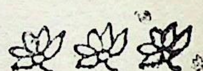
मैं
स्तब्ध-सा
रह जाता हूं
उपदेश तुम्हारा
सुनकर
स्वार्थ का
कुछ कुछ
तुझ में आभास होने लगता है
इसके आगे जब
कहती हो
तुम :

बांटना ही है
तो बांटो झूठ
झूठ-झूठ
सब झूठ
कि
कल यदि यह झूठ
सत्य हो जाय

अमर
हो जाओ तुम
धन्य
हो जाऊं मैं
तुम्हारी
न सही,
तुम्हारी सत्य-संगिनी
कहलाऊं ।



गीत



मोहन निराश

सभी डूब गये,
केवल मैं एक
बह गया ।
वितस्ता में बहाये,
बहते प्रदीप की तरह ।

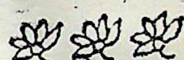
सभी ऊब गये,
केवल मैं एक
सह गया ।
सलीब उठाये मसीहा की याद सहते
मसीहा को उठाये सलीब की तरह ।

सभी खूब गये,
केवल मैं एक
रह गया ।
पहेली-चक्कर में रहते
रास्तों-राहों के
अन्तरीप की तरह ।

❖

गीत

शकुन्तला सेठ



जगत की मृत चेतना को, आज जीवन दान दे दे।
प्राण दे दे, गान दे दे, आज जीवन दान दे दे॥

तप्त सिला की धरा पर—
रो रहा शिशु सा यह मानव।
मृग तृषा से भ्रांत पथ पर,
चल रहा कब से हो दानव।

वासना की तप्त लू से,
झुलसते हैं प्राण औ' तन।
आज उस भूले मनुज को,
शीत जल का पान दे दे—जगत् की—

कर रहा विद्युत से क्रीड़ा,
गिन रहा यह सृष्टि के कण।
सौर मण्डल की सतह पर—
चाहता उसका विजय मन

पर बनाने जा रहा यह,
नाश के सामान सारे
तू डरी सी इस धरा को
आ, जरा सा त्राण दे दे—जगत्की—

भेद की नाशक सुरा पी
गिर रहा पथ से सुरापी
हिन्दू तू है; मैं हूं मुस्लिम,
वह बंगाली यह पंजाबी।

एक दिल है एक धड़कन,
एक हैं इन्सान सारे।
धरती माता एक है, यह—
सब को सच्चा ज्ञान दे दे।

जगत की मृत चेतना को, आज जीवन दान दे दे।
त्राण दे दे गान दे दे, आज नूतन प्राण दे दे।



मेरा हारिल



जानकीनाथ कौल 'कमल'

मेरा हिय उर्वरित हुआ है
कसक भरी कलनाओं से,
मेरे दृग भर भर रहते हैं
मधुमय घन धाराओं से।

किन्तु, प्रिये ! अवसाद यहां है
क्या यह हिय, यह दृग हैं अपने,
जब जी चाहता है गाने को
भिद जाता है स्त्रावों से।

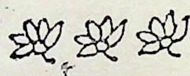
हारिल मेरा उड़ जाता है
प्रातः ही किन द्वारों से,
सायं को अवतरित हुआ
आता है खिन्नागारों से।

निशा निमन्त्रित होने पर भी
दिन को विदा नहीं मिलती,
दिवस आने पर नहीं छूटती
नींद, निशा के जालों से।



गीत

शंकरदास 'पिपासु'



अपनेपन के गीत सुना दे !
गीत सुना दे, हिय हर्षा दे, जग पर सरस सुधा बरसा दे ।

दुख के बादल घिर-घिर आए,
बिजली तड़प तड़प तड़पाए,
सुख समीर के प्रिय झोंकों से दुख के बादल दूर भगा दे ।
अपनेपन के गीत सुनादे ।

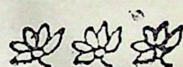
जगती जागरूक हो जाए,
जब तू सुख के गीत सुनाए,
तुझ पर निर्भर जगती का सुख, जग के रूठे मीत मना दे ।
अपनेपन के गीत सुना दे ।

दुख के गीत न सुनता कोई,
सुनकर सीस न धुनता कोई,
गा गा जीले जीले गाले, जीवन जग का सरस बना दे ।
अपनेपन के गीत सुना दे ।



गीत

दुर्गादत्त शास्त्री



गीत मेरे सो गये हैं, मैं इन्हें कैसे जगाऊं
फूल जो कुम्हला गये हैं, मैं उन्हें कैसे खिलाऊं
हर चुभन सहने को मैं तय्यार हूँ, पर
भग्न दिल-दर्पण को मैं कैसे जुड़ाऊं

जानता हूं फूल कांटों में खिला है
दीप उजियारा, तपन में ही पला है
हर नगीना रत्न पद पाने से पहले
लाख मुश्किल में पड़ा है, तब ढला है
दु:ख मुझे स्वीकार हैं पर मीत मेरे
छल कपट से मैं जगत कैसे रिझाऊं

तार टूटी बीन सा, तुम बिन व्यर्थ मैं
लुट गई जिसकी बहारें ठूंठ वो हूं
हर कदम की धूल हूं मैं तुझ को खोकर
जिसकी मंजिल ही नहीं मैं राह वो हूं
पर मुझे पाने की शर्तें हैं कलंकित
प्रेम पावन है उसे, कैसे लजाऊं



गीत



श्रीवत्स "विकल"

मैं मधु की बुन्दिया बन जाऊं,
प्रेम-निशा के मृदु सपनों को, जो अश्रुजल से धोते हैं,
जिन नयनों के पलक पटल पर, तम के मेघ सघन होते हैं।
जिनकी लघु आशा पर भी, 'विकल' तुषारापात हुआ हो,
ऐसी दे दो प्रीति मुझे तुम—
मैं उनकी निंदिया बन जाऊं

जिस मन मरू की तीक्ष्ण तृषा पर, संसृति ने पावन बरसाई,
उसको नव मधु ऋतु दे आई, मेरे मानस की अमराई।
आवासित हो ममता मन में, स्वेद-स्नात-तरल-तन के हित,
ऐसी दे दो गीति मुझे तुम—
मैं सुख की सिज्या बन जाऊं

जिस छप्पर की मधु छाया से, रूठे सूरज-चांद-सितारे,
जिनकी सुख सुधियों को, लूट गए शतश: अंधियारे।
उन झोंपड़ियों के आले में, लेकर मिट्ठी की लघु काया,
ऐसी दे दो रीति मुझे तुम—
मैं सुप्रेम सुदिया बन जाऊँ

उस अन्तस् का प्यार बनूं मैं, जिस में भूख दफन हो जाती,
स्वास-स्वास बनती चिंगारी-उजली रात कफन हो जाती।
जिन अधरों के शुष्क अजिर में, चिर ज्वाला का जाल बिछा हो,
उनकी चिर परिचित शिकनों पर—
मैं मधु की बुन्दिया बन जाऊँ

लेख

- डॉ० कर्णसिंह
- रत्नलाल शांत
- रामनाथ शास्त्री
- बलजिन्नाथ पंडित
- वेदपाल दीप
- शिबनकृष्ण रैणा
- गंगादत्त विनोद

नयी राष्ट्रीयता के अग्रदूत : कालिदास

डॉ० कर्णसिंह



अनन्त सौन्दर्य के दृष्टा महाकवि कालिदास का नाम लेते ही मन के चित्र पटल पर एक महान व्यक्तित्व उभरता है। मानवीय अनुभूतियों को शब्दों की तूलिका से छू लेने वाले इस अनूठे कलाकार ने भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की अनुपम सेवा कर अक्षय यश प्राप्त किया है। सत्य तो यह है कि शताब्दियों के सरकने के साथ साथ कालिदास और भी निखर रहा है, नित्य नये झिलमिलाते शाश्वत सत्यों का प्रतिपादन कर रहा है।

सुरभारती के लाड़ले कवि कालिदास प्रकृति के अभिन्न सखा और मानव स्वभाव के विशेषज्ञ, सर्वेक्षक थे। सुषमामयी प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य के आराधक मां सरस्वती के इस वरद पुत्र ने अपनी कृतियों में यथार्थ और आदर्श का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। प्रकृति-वर्णन और मानव के आन्तरिक भावों के निरूपण में कालिदास जिन ऊंचाइयों तक पहुंचे, वे युग युगांतर तक आकर्षण का प्रतीक बनी रहेंगी।

उन्होंने अधिक नहीं लिखा। लिखे केवल तीन नाटक और चार काव्य। यही उनकी अभिराम चिररूचिर भारती है। भारतीय संस्कृति और जीवन को पृष्ठभूमि बनाकर इन सात साहित्यिक कृतियों में ही अपनी कल्पना, प्रतिभा और काव्य-सौष्ठव के बल पर वे विश्वकवि कहलाने के अधिकारी बन गये, ऐसे विश्वकवि, जो जीवन की पहेलियों को सुलझाते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकाशस्तम्भ की तरह चमकते रहते हैं।

कालिदास एक नई राष्ट्रीयता के युग की देन थे। अपनी अपूर्व धार्मिक और आध्यात्मिक विरासत को देख वे तनिक भी झिझके नहीं। उपनिषदों से ज्ञान-मार्गी अद्वैत साधना वरी। रामायण से आदर्शवाद चुना। महाभारत से बौद्धिक

चरित्र विकास समझा, धर्मसूत्रों और स्मृतियों से आचार संहिता मानी। पुराणों में वर्णित समृद्ध कल्पना तत्वों को पिरोया। पाशुपत आगमों से सृष्टि रहस्य ढूंढा। सांख्य योग से अन्तर बसी समाधि का सार निचोड़ा और भरतमुनि से नाटकीय प्रबन्ध सूत्र खींचे। यही कालिदास का जीवन दर्शन बन स्थापित हुए। उदात्त, विराट, शान्त, ललित, मोहन, भारतीय धर्म और दर्शन का यही प्रयत्नपूर्वक सजाया-संवारा रूप कालिदास का काव्य है। सुकुमारता के साथ सुशीलता जुड़ी हो, मानसिक मृदुता के साथ चारित्रिक दृढ़ता सजी हो। अपार वैभव संग विपुल वैराग्य गुंथा हो, सौन्दर्य धर्म का आश्रय ले बढ़े, कुछ विरल सी ही है, जो सम्भवत: विश्व-साहित्य पुन: न संजो सके।

एक विशाल भूखण्ड है हमारा भारत। नगाधिराज हिमालय उत्तर में अपनी दोनों बाहें पसारे है। पूर्व और पश्चिम उनसे सटे खड़े हैं और ये सब यों शोभायमान हो रहे हैं मानों :

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयोनाम नगाधिराज:।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य
स्थित: पृथिव्या इव मानदण्डा।"

कालिदास के ही शब्दों में हिमालय पृथ्वी का मानदण्ड बन गया है। वास्तव में हिमालय के प्रदेश देवभूमि हैं और हिमालय पर्वत देवात्मा। स्पष्ट है कि हिमालय और समुद्र के मध्य स्थित भूखण्ड ही कालिदास की कृतियों में अपने सम्पूर्ण आध्यात्मिक और आधिभौतिक रूप में प्रकट है। उनकी रचनाओं द्वारा दिगदर्शित भव्य सांस्कृतिक एकता और दिव्य सौन्दर्ययुक्त महादेश ही हमारी भावात्मक एकता की सुदृढ़ आधारशिला है।

कालिदास ने भारतीय भौगोलिक ज्ञान के विकास में अपने साहित्य वर्णनों द्वारा अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मेघदूत और रघुवंश में नदियों, पहाड़ों और नगरों का विशद वर्णन सिद्ध करता है कि उनका भौगोलिक ज्ञान अपने में सम्पूर्ण था। रघु की दिग्विजय उन्हें चारों दिशाओं की सीमाएं नापती विभिन्न मानव-मंडलियों को प्रभावित करने ले जाती है। इसी प्रकार देश की भौगोलिक एकता के चित्र मेघदूत की रामगिरी से अलका तक की यात्रा में दिखलायी पड़ते हैं और आज से हजार वर्ष के पूर्व के भारत का एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार कालिदास ने न केवल बौद्धिक प्रतिभा का प्रदर्शन ही किया अपितु,

धर्म और शिक्षा द्वारा नित्प्रति दुहराई जाने वाली प्रार्थनाओं से हृदय में अंकित राष्ट्रीय प्रतिमा का गुणगान भी किया है।

भारत जीवन को समन्वय की दृष्टि से देखता है : 'एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति'। लक्ष्य वही परमानन्द की प्राप्ति है, परन्तु उसे पाने के मार्ग अलग-अलग हैं। ज्ञानमार्ग हो या योगमार्ग, भक्ति मार्ग हो या कर्ममार्ग—भारतीय दर्शन मनुष्यों के स्वभाव विशेष पर निर्भर विभिन्न क्षमताओं का महत्व स्वीकार करता है। इसी सन्दर्भ में कालिदास ने कहा है—

"बहुधाप्यागमैर्भिन्ना: पन्थान: सिद्धिहेतव: ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया ईवार्णवे"

विभिन्न आगमों पर आधारित अनेक पंथ अन्त में आप में ही केन्द्रित होते हैं, जैसे गंगा के अनेक प्रवाह अन्त में समुद्र में मिल जाते हैं।

स्वयं वे शिव के उपासक थे, शिव की सच्ची महिमा को जानते थे। जहां रघुवंश का आरम्भ शिव-पार्वती की स्तुति है, वहीं विष्णु भी कालिदास की पूजा स्वीकारते हैं। एक ओर कुमारसम्भव में शिव-पार्वती की परिणय लीला होती है तो दूसरी ओर मुग्ध दर्शकों में ब्रह्मा भी कालिदास की अर्चना से प्रसन्न होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव में कोई अन्तर नहीं—तीनों एक ही ब्रह्म के अनेक रूप हैं। कालिदास ने समन्वयवाद के जीवन मूल्यों से सम्बन्धित पक्ष को भी अपनी सांस्कृतिक दृष्टि की सीमा में बांधने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। जीवन के हर क्षेत्र में वे संतुलन बनाये रखने के समर्थक रहे। धर्मशास्त्र के आचारों के संग वैदिक भावना की पीठिका में उन्होंने समन्वयवाद को जीवन के आंगन में ला उतारा। आदर्श रूप हो गये हैं कालिदास अपने जीवन दर्शन की इस स्वाभाविक अभिव्यक्ति में, मंगलमय है यह मनहर इन्द्रधनुष।

वे भारत की एकता के गायक भी थे और भारत की महानता के उपासक भी, भारतीय संस्कृति के पुजारी भी थे और जन साधारण के सुख दुख को समझने वाले पारखी भी। आधुनिक भारत महाकवि कालिदास की प्रभाव सीमा से बाहर नहीं। आज भी उनका सदेश अमोल है।

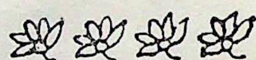
शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् जीती स्वतन्त्रता के लिए भारत ने भारी मूल्य चुकाया है।। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, गुजरात से असम तक भारतीय

तिरंगा लहराने के लिए हमने असंख्य बलिदान दिये हैं परन्तु अनेक कष्ट सहकर और भारी बलिदान से पाई यह स्वतन्त्रता अभी सुरक्षित नहीं। अभी हमें बहुत से चरण उठाने हैं। एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना है, जो अन्दर तो भावात्मक एकता के सूत्र में पिरोया हो और बाहर एक सुदृढ़ चट्टान के समान हो। हमें स्वावलम्बी बनना है, शक्तिशाली बनना है। देश की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए हमें अपनी समस्याओं के हल ढूंढने हैं। बहुत किया, परन्तु बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है।

हमें आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये बहुत कुछ करना शेष है। हमें उनको एक स्वर्णिम भविष्य का आश्वासन ही नहीं देना, वरन् उनके अन्दर भारतीय संस्कृति के प्रति आदर और गौरव की भावना का समावेश भी करना है। इन्हीं सांस्कृतिक आधारों में निष्ठा रख भारत ने समय के कितने ही अंधेरे-उजाले पार किये हैं और आगे भी करता रहेगा।

यही है हमारे भविष्य के कार्यक्रम की रूप रेखा। इसे साकार करने के महान कार्य में महाकवि कालिदास हम सब के लिये प्रेरणा स्त्रोत हैं।

कश्मीर की लोक संस्कृति के कुछ आयाम



रतनलाल शांत

किसी प्रदेश की लोक संस्कृति का सब से बड़ा प्रमाण वहां का लोक साहित्य होता है। लोक साहित्य अपनी प्रेरणाएँ समवर्ती लोक जीवन से लेता है और लोक साहित्य कृत्रिमताओं और आरोपित आवरणों से मुक्त लोक जीवन के अनायास अभिव्यक्ति-क्षणों का सम्पुंजन हुआ करता है। ये क्षण सुसाध्य और प्रकृत होते हैं, अतः इन्हें साधारण जन की पकड़ में लाने में लोक विश्वास बहुत महत्वपूर्ण काम करते हैं। अधिकांश लोक विश्वास भूगोल की सीमाएँ नहीं जानते लेकिन बहुत से विश्वास सीमाओं का उल्लँघन कर ही नहीं पाते। जो स्थानिक वैशिष्ट्य लोक विश्वासों को धरती देती है वह उन्हें निराला बना देता है। और धरती केवल भौगोलिक आयामों या जलवायविक विशेषताओं को नहीं कहते —वह ठोस और सरूप होते हुए भी अरूप और भावना रह जाती है। धरती एक भावना हो जाती है और इस तरह लोक-मानस में बसती है, लोक-रक्त में रंगती है और लोक-श्वास में जीवित रहती है। धरती का एक टुकड़ा, एक अँचल इसीलिए पड़ोस के ही दूसरे अँचल से भिन्न होता है और ऐसे बहुत से विश्वासों का वातावरण फैला देता है जो दूसरे अँचल से सर्वथा भिन्न होते हैं।

भारत के शेष प्रदेशों से सांस्कृतिक दृष्टि से कश्मीर कुछ भिन्न सा है। कारण स्पष्ट है-इसकी भौगोलिक स्थिति। पर्वतों से घिरा हुआ यह प्रदेश गर्मियों में भी कम गर्म नहीं रहता लेकिन गर्म मौसम का विस्तार कम ही है। अप्रैल-मई से सितम्बर तक अच्छी खासी गर्मी रहती है। शेष अवधि या तो सर्दियों का स्वागत करने में तत्पर दिखती है या सर्दियों के वातावरण से घाटी को निकाल कर गर्मियों से अभ्यस्त बनाने में। भौगोलिक भिन्नता के कारण काश्मीर के घरानों में यह समझा जाता है कि बानिहाल पर्वत से

पार 'बाहर' है और उसके इस पार 'अन्दर'। अभी भी आप कई सुशिक्षित कश्मीरी सज्जनों से यह सुनेंगे कि "मैं 'बाहर' गया हूं"—यह बाहर जम्मू ही क्यों न हो। भूगोल के इस क्रूर विभाजन के बावजूद कश्मीर प्राचीन-काल से ही अपने प्राकृतिक सौदर्न्य के कारण समस्त संसार के लिये पर्यटनस्थल रहा है। इस प्रकार कश्मीरी जनता पीरपचाल की जैसी दीवारों के होते हुए भी संसार के मानव-जीवन से परिचित रही है। कश्मीर का लोक-जीवन इस स्थिति में पर्यटकों के सतत आवागमन से अप्रभावित कैसे रह सकता था। देखिये—हर पुरानी पीढ़ी का कश्मीरी किसी भी भारतीय को 'पंजाबी' कहता है। इस प्रवृति का बड़ा कारण है इन सभी प्रांतवासियों का हमारे साथ बोलचाल में हिन्दी माध्यम रखना। कश्मीर एक अहिन्दी प्रांत है। लेकिन यहां हर घर में टूटी-फूटी हिन्दी समझी जा सकती है। हमारे घर की माता जी से लेकर अनपढ़ मांझी और मजदूर तक कुछ न कुछ समझ ही लेते हैं। दूसरे अहिन्दी प्रदेशों के जो "बंगाली या हिन्दोस्तानी ?" "मराठी या हिन्दोस्तानी ?" वाली मनोवृति है उसका पूर्ण तिरस्कार कश्मीर की मनोवृति ने किया है। यह भले ही हो कि हम 'कश्मीरी' और 'पंजाबी' नाम से विभाजन करते हैं। लेकिन ऐसे 'पंजाबी' की कद्र ही होती है। कभी उसका कश्मीरी घराने में निमन्त्रण हो तो बहुत ही आदर किया जाता है और जब कोई अकश्मीरी भारतीय कश्मीरी मुहल्ले में रहने लगे तो सभी चाहेंगे कि उनके साथ उनका अच्छे से अच्छा सद्भावनामय सम्बन्ध स्थापित हो। (किसी हद तक कश्मीरियों में इस दृष्टि से हीन भावना भी रहती है।)

इसी प्रकार विदेशी पर्यटकों को, कश्मीरी लोग उन की असल राष्ट्रीयता की उपेक्षा करके 'अंग्रेज' कहेंगे। इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि यहां आने वाले सभी यूरोपीय, अमरीकी, रूसी आदि भी गोरे होते हैं। दूसरे कश्मीरी जनता का सम्पर्क सब से अधिक अंग्रेज-पर्यटकों से रहा है।

पानी ने कश्मीर को एक विशिष्ट रूप दिया है। वितस्ता तथा इसकी सखी नदियों से झील डल, बुलर मानसबल में पानी प्रवाहित होकर घाटी भर के मान चित्र में जैसे रेखाएं सी उत्पन्न करके उन में विभिन्न रंग भर रहा हो। श्रीनगर से करीब ३ मील की दूरी पर शंकराचार्य की पहाड़ी की चोटी से देखने पर सहज में अनुमान कर सकते हैं कि कश्मीर तो बस एक वाटिका है, जिसकी क्यारियों को सींचने के लिए नदी नालों का जाल बिछा है। शहर को जेहलम नदी पूरे दो विभागों में विभक्त करती है। नौ पुल इन दोनों विभक्त भागों को मिलाते हैं। वितस्ता के बहुत धीमी गति से बहने के कारण और

यातायात की सुविधाओं के कारण भी इन दो भागों के वासियों में कोई मानसिक अंतर नहीं पाया जाता। हां, कभी कभी शादी-व्याह आदि सम्बन्धों के निर्णीत करने के समय "इसपार-उसपार" सुनने में आता है। बात यूं है कि जेहलम की दाहिनी ओर वाले शहर का अर्थ, व्यवहारिक दृष्टि से और जनसंख्या की दृष्टि से अधिक व्यस्त है। बाएं हाथ वाला अर्ध अपेक्षाकृत कम। लेकिन यदि हम और आगे सातवें पुल की ओर जाएं तो वास्तव में इस ओर व्यस्तता उत्तरोत्तर घटती ही नजर आती है। वहां आप आली-शान मकान पाएंगे, विशेष कर नदियों के दोनों किनारों पर ऊंचे ऊंचे मकान हैं, जिनका स्थापत्य शतियों पूर्व का है, लेकिन उनमें रहने वाले बहुत कम हैं। वास्तव में समय की तेजी के साथ बढ़ने के कारण और उद्योगों के केन्द्रों के, विशेषकर अमीरा कदल के ही आस-पास के इलाके में होने के कारण शहर उसी ओर बढ़ रहा है। इसीलिए यह मनोवृति आज भी पाई जाती है कि अमीरा-कदल के लोग अधिक सभ्य और आर्थिक दृष्टि से उच्च हैं और इन के मुकाबले में छठे और सातवें पुल की ओर रहने वालों को "सरहद के कश्मीरी" कहा जाता है। वह अवश्य ही शहर की सरहद है लेकिन न जाने......क्यों पूर्व, पश्चिम, दक्षिण की सीमाओं पर रहने वालों को सरहद के नहीं समझा जाता। इस सरहद के प्रति भी लोगों की कुछ भावनाएं हैं। शादी-व्याह के सम्बन्ध सरहद वाले शहर के दूसरे भागों मे रहने वालों से करना अधिक उत्तम समझते हैं जबकि सरहद वालों से लोग ऐसा कम ही करते हैं। धीरे धीरे सरहद वालों के मन में एक हीन-भावना उत्पन्न होती जा रही है। अपनी अच्छी से अच्छी, कोलाहल से दूर एकांत जगहों को छोड़ कर वे शहर के भीतर तंगी से रहना ज्यादा अच्छा समझ रहे हैं। खैर, इसको हम भौगोलिक और ऐतिहासिक आवश्यंभाविता मान सकते हैं। एक उक्ति ठीक ही प्रचलित है कि, "वुहिवंपयि सरहदु'च हून्य दव तु'ह्यो'रिम ब्रा' र्य वोठ"—बीस रुपए में सरहद में कुत्ते की दौड़ (के समान जमीन) और 'ऊपर' (पहले-दूसरे पुल के आस पास) बिलाव की एक छलांग मात्र मिल जाएगी।

आर्थिक दृष्टि से भी अमीरा कदल में उच्च-मध्यबर्ग और उच्चवर्ग के तथा शहर के भीतर साधारणतया मध्य तथा निम्नवर्ग के लोग अधिक संख्या में रहते हैं।

इसी प्रकार झील डल और उसके आस-पास रहने वालों के जीवन में एक विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। झील डल से जुड़ा हुआ शहर का एक महत्त्वपूर्ण भाग है—रैनावारी। यहां अधिकतर साग-सब्जियों की खेती होती है। ऐसे खेतीहरों को 'दांदर' कहा जाता है। यद्यपि ये खेतीहर तथा साग सब्जी विक्रेता

एक ही नहीं होते तथापि विक्रेताओं को भी 'दांदर' ही कहा जाता है। साधारणत: सरकारी नौकर या अन्य रैनावारी-निवासी व्यवसायियों के घरों के साथ ही अपनी साग-भाजी की बाड़ी लगी ही होती है। ब्याह सम्बन्ध रैनावारी में किया जाए तो लड़की वाले कहते हैं कि --"कुछ न हो, हमारी बिटिया के घर सब्जी का अकाल तो नहीं रहेगा।" डल के पानी ने रैनावरी को एक प्राय द्वीप-सा बना दिया है। हर किसी के घर के निकट ही नदी नाले होंगे। लेकिन पानी की बहुतायत के होते हुए भी यहां के मकानों की बनावट में कोई विशेषता नहीं है। कोई अंतर भी नहीं शेष शहर से। हां, बिल्कुल पानी में ही जिनका घर है उनके पास अपना छोटा सा काम-चलाऊ शिकारा (नाव) भी रहता है। कई दुकानें बिल्कुल पानी के किनारे पर हैं। उन से खरीदने के लिये शिकारे में जाना पड़ता है। रैनावारी के कई निम्नवर्ग के घर कई उद्योग-धंधों को अपने परम्परागत पेशों के रूप में सुरक्षित रखे हुए हैं। इनमें मुख्य हैं चटाइयां बुनना। झील में स्वयं ही चटाइयों की घास उगा करती है, जो छ: सात फीट लम्बी हो जाती हैं। उसको काट कर चटाइयां बुनी जाती हैं।

कश्मीर घाटी के ग्रामीण क्षेत्र के दो मुख्य भाग हैं--'कामराज़' और 'मराज़'। इन लोगों की प्रवृत्तियों में भी अंतर पाया जाता है। इस की भाषा और बोली के अंतरों की कभी-कभी विशेष प्रासंगिक अवसरों पर बढ़ा-चढ़ा कर सुनाया जाता है। सोपुर के रहने वालों में अतिथि का विशेष सम्मान नहीं होता, वे 'माज़रत' (आदर, खातिर) आदि नहीं करते। 'कामराज' -- नीचे वाले अर्थात् सोपुर, बारा-मुल्ला आदि इलाकों को और 'मराज' अनंतनाग, पहलगाम आदि के समीपवर्ती इलाके को कहा जाता है। कामराज़ तथा मराज के जीवनयापन का परिचय इस उक्ति में हम पा सकते हैं।

कामराज़स मंज़ गछि ज़ेनुन
त मराज मंज़ गछि ख्यो'न

'कामराज़ में आदमी को कमाना चाहिए और मराज में उसका उपभोग करना चाहिए।' स्पष्ट है कि मराज इलाका कामराज़ की अपेक्षा अधिक उपज ऊ और धनधान्य सम्पन्न होना चाहिए। है भी ऐसा ही। यह इलाका पहाड़ियों के दामन में ही बसा है। वहां पानी की कमी न होने के अतिरिक्त दूसरी वन्य-सम्पदा भी प्राप्त होती है। इसीलिए तो 'मराज' के इलाके में मेहमान की आवभगत भी काफी होती है। 'सोपुर' के लोगों के लिए यह प्रसिद्ध है कि कोई अतिथि दिन को उनके हां जाए तो खातिर न देख कर वह जब उठने लगता है तो मेजमान उससे कहते हैं कि आप सुबह का बना हुआ खाना तो ठण्डा होने के कारण क्या खायेंगे, और अब

हम नया बनाएं तो आप इंतजार भी नहीं करेंगे। अत: फिर मेहमान के लिए उठ चलने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं रहता। "दानी त्रोव तापस, वोल बा खस"—शाली धूप में डाली गई, आइए, विराजिए! इसी तरह सोपुर का दोस्त होना भी एक उक्ति का विषय बन गया है। "सोपुर्य यार गव कायुर नार"—सोपुर का दोस्त तो बस 'कायरु' लकड़ी की आग समझ लीजिए कि वह ज्यादा देर रह ही नहीं सकता।

घाटी के लोक- जीवन में नदी पर के मांझियों का जीवन बहुत महत्त्व रखता है। उनकी बड़ी-सी किश्ती, जो कि बारह तेरह गज लम्बी और दो ढाई गज चौड़ी होती है—'डूंग' या 'बहाच' कहलाती है। अमीरा कदल से शुरू करके आप नदी के साथ साथ लगी हुई ऐसी सैकड़ों किश्तियां पायेंगे। पुआल या घास की छत वाली ये 'बहाच' इन में रहने वाले मांझियों के घर हैं। ये चलते फिरते हैं। अधिकतर बहाचें 'शाली स्टोर' (धान का सरकारी कोष) से विभिन्न घाटों तक शाली (धान) लाती हैं जहां से वह कंट्रोल के दाम पर शहर भर को मिलती है। लेकिन बहाच वाले ऐसा एकाध बार ही कर पाते हैं। इस तरह इनका गुजारा नहीं चल सकता इन लोगों ने विभिन्न धंधे अपनाए होते हैं। कई मुर्गियां पालते हैं—अण्डों का व्यापार करते हैं और धीरे-धीरे छोटी-सी दूकानें करने लगते हैं। आप पूछ कर देखिये तो जान जायेंगे कि किसी का बेटा 'वाहर' है—व्यापार करता है। किसी का पूत 'मिलिट्री' में है। कोई लकड़हारे का काम करता है। कोई ठेला हांकता है तो कोई बोझा ढोता है। इस प्रकार एक ही बहाच के कुटुंब में विभिन्न पेशेवर मिलेंगे। डूंगे बहाचों से जरा भिन्न होते हैं। वे छोटे होने के कारण छोटे नावघरों (हाउस-बोटों) का काम भी देते हैं। लोगों को 'वैशाखी' या किसी रविवार को मुग़ल बाग घूमने जाना हो तो डूंगे को दिन भर के लिए ले जाते हैं। मालिक ही अपने डूंगे को खेता है। लेकिन ऐसे अवसर भी बहुत कम आते हैं। इसलिए इन डूंगे वालों के पास शिकारे (छोटी नावें) भी होती हैं। ये शिकारे आप से पांच-दस पैसे लेकर आपको जेहलम के पार उतार सकते हैं। डल झील के नाव-घरों के मांझियों का जीवन जरा भिन्न होता है। अपने घरों को अच्छी से अच्छी तरह और आकर्षक ढंग से सजाना कोई उनसे सीखे। फिर सभ्यता से पेश आना और टूटी-फूटी अंग्रेजी बोल लेना। उनके हां पीढ़ियों से चला आ रहा है। जेहलम में भी कई बहाच वाले आर्थिक दृष्टि से जरा अच्छे होते हैं। ये अपनी बहाच की छत शिंगल की बनाते हैं। उसके ऊपर दूसरी मंजिल का छोटा-सा कमरा बनवा लेते हैं और अपना स्थान स्थायी बना कर बिजली आदि का प्रबन्धभी कर लेते हैं।

साधारणतया बहाच वाले गरीब होते हैं। उनके कमरों में शायद ही प्रकाश घुस सके। कभी-कभी आप किसी गांव से चली आती हुई कोई बहाच ईंटों से भरी या जलाने अथवा मकान बनाने की लकड़ी से भरी पायेंगे। हाय राम! बहाच बिल्कुल ऊपर तक पानी में डूबी है ऐसा दिखे कि यह अब डूबी कि अब डूबी। लेकिन मांझी हैं कि निश्चिन्त गाते हुए चले आ रहे हैं। इसी तरह लकड़ी के पांच छः सौ लट्ठे बांध कर लाए जाते हैं। इन बहाच के निवासियों के बच्चे अच्छे तैराक होते हैं। दिन रात पानी में रहते हैं लेकिन हम कभी ही उनके बच्चे के डूबने का समाचार सुनते हैं। प्रसिद्ध है कि मांझी का बच्चा डूब जाय तो साथ में मछली पकड़ लायेगा।

जलवायविक विभिन्नता का उल्लेख पहले हो चुका है। सर्दियों ने यहां के जीवनयापन के ढंगों में काफी भिन्नता लाई है। कांगड़ी का उपयोग इनमें मुख्य है। कांगड़ी है क्या? मिट्टी के बर्तन में आग रख कर तापी जाती है। उसे उठाने और उसके सीधे सम्पर्क के कारण जलने से बचने के लिए उसके गिर्द बेद का पिंजरा बुना जाता है। काफी लाभदायक होने के अतिरिक्त कांगड़ी लोक-कला का भी सुन्दर नमूना है। हां, कांगड़ी के उपयोग में एक विशेषता होती है।

पृष्ठतस्सेवयेत् अर्क जठरेण हुताशनम्।

आग को सामने से तापने का भी एक ढंग है। कश्मीरी लोगों का एक लम्बा, सा चोगा होता है जिसे 'पयरन' कहते हैं। इस प्रकार कांगड़ी का एक आंतरिक-उष्णक का काम देती है। कांगड़ी के प्रयोग की एक प्रक्रिया है। लोयला दो तीन बार फूंका जाता है। फिर उस जले कोयले और गर्म राख को धीरे-धीरे हिलाते रहना पड़ता है। इस से कांगड़ी बहुत देर चल सकती है। कांगड़ी के इस प्रयोग को कश्मीरी में कांगड़ी 'जमाना' कहते हैं।

शहर के सरहदी, भीतरी भाग या रैनावारी के किसी तरफ चल कर देख लीजिए—मकानों की छतें कई प्रकार की मिलेंगी। टीन की, शिंगल की, मिट्टी की छतें। मिट्टी की छतें बनाने में एक विशेष प्रकार की कला का ज्ञान आवश्यक होता है। जिस प्रकार मिट्टी की दीवारें आप शहर में कहीं-कहीं और गांवों में अधिकतर पाएंगे, उसी प्रकार गांव में मिट्टी की छतें कम और घास या पुआल की छतें अधिक मिलेंगी। ऐसी दीवारों को यंदर-देवार (यन्त्र की दीवार) कहते हैं। इनका निर्माण लकड़ी के तख्तों का कालिब बना कर उसमें गीली मिट्टी भर कर उसे लातों से दबाने से होता है। मिट्टी की छतों पर घास और कुछ फूल भी उग आते हैं जो बड़े सुन्दर लगते हैं। ऐसी छतें अधिक ढलाऊ नहीं होतीं। कश्मीरी

काव्य "शिवलगन" में उल्लेख है कि शिव उमा के हां बैल पर सवार होकर दूल्हे के रूप में आ गए। उनके बराती भैरवगण थे। कोई बन्धु-बांधव नहीं। पूछने पर उन्होंने अपने हाथ-पांव दिखाये। उमा की मां मैना खिन्न हुई कि उसकी फूल-सी बेटी ने किस योगी को वर लिया है। इस पर उमा बाहर निकल कर उसके सामने नृत्य करने लगी। शिव प्रसन्न हुए और अपना सौम्य रूप प्रकट किया। आकाश से स्वर्ण-वृष्टि होने लगी। लोग सोना समेटने लगे। वहीं एक जगह उल्लेख है—

व' नितव लूकव कोताह चालव
पश आयि बरनय लालव सूत्य

कोताह बालव पवतु'र्य'व
पश आयि बरनय स्वनशीनु' सूत्य......

इस में चौथी पंक्ति का अर्थ है—हमारी छतें स्वर्ण-हिम से भर गई हैं।

यहां मेरे विचार में कवि का तात्पर्य उसी अपनी मिट्टी की छत से होगा। क्योंकि सोने की बर्फ टीन की छत पर समा सकने की कल्पना शायद आधुनिक कवि भी न कर सकते हों।

सर्दियों में कश्मीर में सब प्रकार की वस्तुयें नहीं मिलतीं। मिर्च-मसाले या दूसरी सब्जियां भी नहीं। एक सब्जी 'हाक' सदा बहार सब्जी है, जो आप को कश्मीर के किसी भी इलाके में किसी भी ऋतु में मिल सकती है। इसलिए एक कश्मीरी विनम्र होकर ईश्वर से कुछ याचना करेगा तो यही कि मुझे 'हाक भात' देते रहना। एक तो 'हाक भात' एक भोजन है दूसरे 'दाल रोटी' की तरह 'हाक भात' एक सीमा है। सीमा के इस पार तो ईश्वर जितना चाहे दे सकता है। लेकिन इसकी दूसरी ओर जाने से रक्षा करने के लिए ही वह कल्पना होती है। कभी इस 'हाक भात' में काफी औपचारिकता भी छिपी रहती है। सर्दियों में शायद ही बहुत सब्जियां मिलें, अतः कई सब्जियों को नवम्बर में ही खरीदकर सुखा लिया जाता है। जैसे हाक की एक किस्म जो बथुआ साग से मिलती जुलती है—'व्वपल हाक'। इसको सुखा कर फिर रस्सियों में बटा जाता है। गांठ गोभी इसी प्रकार है। उसकी मालाएँ बनाकर सुखाया जाता है। शलगम और मूली सुखाई नहीं जा सकती। अतः उन्हें अपने मकान की बालकनी की सीध में आँगन में मिट्टी खोद कर गाढ़ के रख दिया जाता है और समय समय पर उन्हें निकाल कर प्रयुक्त किया जाता है। बैंगनों को सुखा कर सुन्दर सालन तैयार किये जाते हैं। सूखे बैंगन गर्मियों में भी प्रयुक्त होते हैं। सूखे बैंगनों को विशेषकर इमली आदि की खटाई में पकाया जाता है। टमाटर और प्याज का सुखाना कोई अपवाद

नहीं। सब्जियां या मांस अधिकतर मिट्टी की हांडियों में पकता है। हां, जब ये सूखी सब्ज़ियां पकती हैं तो इनका वास्तविक स्वाद काफी मसालों में पकाने से ही हो सकता है। यूं तो घाटी भर में मसाले खूब खाये जाते हैं। मसाले का अधिक प्रयोग शायद यहां की जलवायु के कारण होता है। जलवायु के साथ ही यह भी प्रसंग आता है कि कश्मीर भर में माँसाहारी लोगों की संख्या काफी मिलेगी। निन्यानवे प्रतिशत से कुछ अधिक ही मांस खाते हैं। सर्द इलाका होना इनकी वजह मानी जा सकती है। लेकिन कई और भी विचार हैं इस सम्बन्ध में। मुसलमान, कश्मीरी या अकश्मीरी, मांस के भक्षक होते ही हैं। लेकिन यहां उनकी यह आदत भी औरों से बढ़चढ़ कर ही है। हिन्दुओं में इसका इतना प्रचलन इसलिए समझा जाता है कि कश्मीर शैवमत की जन्मभूमि और केन्द्र रहा है। हिन्दुओं के जीवन में मांसाहार ने ऐसा स्थान बना लिया है कि कई महान धार्मिक उत्सव मांस के बिना अपूर्ण रहते हैं; जैसे श्राद्ध और दूसरे पितर-कर्म, जन्म दिन, ब्याह-शादी, कई यज्ञ आदि भी। पशु-यज्ञ का भी यहां प्रचलन है।

चाय का प्रचार तो हर कहीं है। लेकिन कश्मीर की चाय आम चाय से काफी भिन्न है। इसकी पत्ती देशी चाय की पत्ति से भिन्न होती है और इसको बनाने का ढंग भी दूसरा है। पानी में पत्ती डालकर उबाली जाती है। काफी उबलने से ही इसका रंग निकलता है फिर चीनी डाल कर दूसरी बार उबालते हैं। दूध के बिना ही ऐसी चाय को 'म्वगल्य चाय' या कहवा कहते हैं। दो दो 'खोस' (पीतल के बने हुए कप) हर आदमी पी ही लेता है। कभी अतिथि की खातिर करने के समय उनमें दूध भी डाला जाता है, तो यह 'डबल' चाय बन जाती है। इसके इलावा नमकीन चाय (शीर्य चाय) का भी बहुत रिवाज है। बनाने में कोई विशेष अन्तर नहीं। यह चाय अधिकतर समावार नाम के एक पात्र में बनती है। 'समावार' (Samovar) का उल्लेख रूसी साहित्य में काफी हुआ है; क्योंकि रूस में भी इसका उपयोग काफी होता है। रेलवे स्टेशनों पर पानी गर्म करने वाले पीपे से रहते हैं जिनके भीतर आग रहती है और पानी उबलता रहता है। इसी का छोटा रूप समावार होता है।

सर्दी से बचने के लिये कई साधन अपनाए जाते हैं, लेकिन शराब आदि मादक वस्तुओं का तो कम ही प्रयोग होता है। कहीं मिले तो गार्हस्थिक जीवनसे दूरही। नशे की अन्य कई वस्तुओं का प्रचलन अवश्य है।जैसे तम्बाकू (जो कि बूढ़ी स्त्रियां भी पीती हैं) के इलावा नसवार का प्रयोग। नसवार पुरुष और स्त्रियाँ दोनों सूंघती हैं।

सूंघने के इलावा नसवार का एक और उपयोग दांतों में लगाने का भी होता है। उत्तर प्रदेश आदि प्रांतों में तो पान से दांतों का लाल रंग रहना आभिजात्य का एक चिन्ह है, इसी प्रकार यहां भी नसवार दांतों में मलते मलते पर्तें जम जाती हैं। इन आदतों में पुरुष स्त्री का या हिन्दू मुसलमान का कोई अन्तर भी नहीं पाया जाता। धार्मिक भेद ने जीवन की सहजता के बीच कोई बाधा नहीं उत्पन्न की है। इसी प्रकार शहर के धन्धों की बात है। एक दो धन्धे काफी प्रचलित हैं। गांव में अधिकांश घरों में यंदर (यंत्र-चरखा) चलता है। लोइयां बनती हैं और यह लोइयां फिर शहर में बिकने को आती हैं। शहर में भी यंदर चलते हैं। यंदर का निकला धागा फिर पश्मीने की लोई (तूस) बनाने के काम आता है और इस प्रकार सहायक आय हो जाती है। हिन्दू घरानों की निम्न-वर्ग की स्त्रियां 'फ्यरन' की 'डूरें' (डोर) भी बुनती हैं। फ्यरन के दामन में जेब के इर्द-गिर्द और गले के किनारे के साथ साथ यह डोर लगती है। ढाई इंच चौड़ा डोरा सा बुना जाता है जो फिर बेचा जाता है।

यहां का शृंगार भी विशिष्ट है। गांव की स्त्रियां अपने सिर के बालों को रस्सियों की तरह बट कर उनकी वेणियां बनाती हैं जो संख्या में दो ढाई दर्जन होती हैं यह वेणियां लटका के कानों के पास दाएं बाएं बांधी जाती हैं। इसके इलावा यहां की खड़ाऊं विशेष होती है। इस खड़ाऊं के साथ हमारी सांस्कृतिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं। एक विशेष खड़ाऊं होती है जो जमीन से करीब चार पांच इंच ऊंची होती है। साथ ही एड़ी के भीतर शून्य में एक कंकरी रखी जाती है। चलने पर उस में से बजने की आवाज निकलती है। ऐसी खड़ाऊं को रौनिदार (घुंघरू-वाली) खड़ाऊं कहते हैं। लड़की को दहेज में ऐसी खड़ाऊं के कई जोड़े दिए जाते हैं। इस पर कला के भी अच्छे नमूने खुदे, और रंगे होते हैं। ऐसी खड़ाऊं का प्रयोग मध्य-वर्गीय घरानों में बर्फ पर चलने के समय होता है।

गर्मी में कश्मीर में वेश-भूषा की कोई खास तबदीली तथा अंतर नहीं पड़ता। लेकिन उक्ति है कि किसी देश की संस्कृति के अवशेष गृहणियों में ही बचे रहते हैं। सर्दियों का फ्यरन सभी का समान ही होता है। केवल मुसलमानों का फ्यरन जरा छोटा और हिंदुओं का लम्बा होता है। स्त्रियों के फ्यरनों की एक विशेषता है कि वे मर्दों से अधिक ढीले ढाले होते हैं। लेकिन घर का सब काम-काज, सब जिम्मे-वारी स्त्री के ही कंधों पर होती है। अत: उसके फ्यरन के ऊपर एक लुंगी बंधी रहती है जो एक कमरबंद का काम देती है। लुंगी की कल्पना ही लोक-जीवन में स्त्री का स्थान और फिर स्त्री की स्फूर्ति और कार्य-तत्परता की दशा का संकेत

करती है। इसके बाद स्त्रियों केसिर का पहनावा आता है। मुसलमान स्त्रियां सिर पर 'कसाब' पहनती हैं। ग्रामीण मुसलमान स्त्रियों का कसाब पांच छः इंच ऊंचा रहता है और उसको काले सिरों वाली पिनों से बांधा तथा सजाया जाता है। शहरी स्त्रियों के बुर्के के तले कसाब कदरे छोटा होता है। और उच्च घरानों के कसाब नहीं के बराबर ही रहते हैं। गांव में फ्यरन के गले पर कढ़ाई के सुन्दर डिज़ाइन रहते हैं और उन स्त्रियों के कानों में करीब एक दर्जन चांदी के बड़े बड़े कुण्डल भी पड़े होते हैं।

हिन्दू स्त्रियां सिर पर एक 'तरंगा' बांधती हैं। सिर के ऊपर लम्बे तूलदार लट्ठे की चिकनी लटें एक दूसरे के ऊपर लपेटी जाती हैं। पुरुष पगड़ी बांधते हैं लेकिन पगड़ी और तरंग के बांधने में फर्क है। तरंग केवल माथे के ज़रा ऊपर भौंहों के समानांतर बांधा जाता है। सिर पर कपड़े का एक टोप सा कलपुश (सिर का पोश) पहन कर फिर हिन्दू स्त्रियां तरंग बांधती हैं। पीछे से आप एक लटकती हुई कपड़े की लट भी पाएंगे जिसकी दो नोकदार बटी हुई शाखें होती हैं। तरंग बांधते समय इस 'पूच' का ऊपर का सिरा उसीमें खोंस दिया जाता है। मुसलमान स्त्रियों की यह पूच चौड़ी होती है। तरंग बांधने वाली स्त्री मुहल्ले भर में एकाध ही निकले। ऐसी स्त्री सम्मान पाती हैं। विवाह में लड़की के सिर पर यह अनिवार्य रूप से बांधा जाता है। बाद में वह उसे रहने दे या उठा दे। इसी सम्बन्ध में लड़की के विवाह पर गाया जाने वाला लोक गीत यों है :

वोवुर्य ओनुय त्वरु'दार
दोबि ओनुय मायु'दार
बखतावार कूरी गंड तरंगय।

"—जुलाहे ने सोने की किनारीदार और धोबी ने माया (कलफ) दार तरंग तुम्हारे लिये लाया। री भाग्यवती बिटिया, तरंग बांधो!" आजकल समय की गति के साथ फ्यरन के स्थान पर साड़ी ही अधिक से अधिक काम में लाई जाती है।

स्त्रियों के बारे में ही बात चली तो बात बढ़ती है। प्रसिद्ध है कि स्त्रियां अपना गुह्य से गुह्य रहस्य भी 'यारबल काकन्य' के सामने प्रकट करेंगी। 'यारबल काकन्य' का अर्थ है "नदी के घाट पर की सखी।" घाटों पर साधारणत: स्त्रियों में बहुत सी बातें होती हैं। पहले जब नलों का प्रबन्ध न रहा होगा तब इन बातों के विषय कुछ सीमित ही होते होंगे। स्पष्ट है कि पढ़ी-लिखी न होने के कारण इन के विषय मात्र एक स्त्री की टीका-टिप्पणी, दूसरी की आलोचना और इसके अलावा अपनी सास, देवरानी या जेठानी रहे होंगे।

कई अकश्मीरी मित्रों का कहना है कि धार्मिक दृष्टि से कश्मीर के हिंदू अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रख पाए हैं। हमारे धार्मिक मन्त्रों का उच्चारण मुसलमानों की संस्कृति और कुछ ऐतिहासिक संघर्षों के कारण एक विशेष सांचे में ढल गया है। शख की आवाज ही लें। यह स्पष्ट ही उस भारतीय शंख से नहीं मिलती जुलती जिस का वर्णन भगवद्गीता में आया है और जिस का अपरिर्वतित रूप ही आजकल भारतीय अकश्मीरी हिंदुओं में पाया जाता है।

ऊपर कई एक मुहावरों में लोकजीवन की परछाइयों का अंकन हुआ है। साथ ही हमारा ध्यान एक और ऐसी ही उक्ति पर जाता है जो ऐतिहासिक सत्यनिरूपण के साथ ही जन-जीवन की एक झांकी दिखाती है। लड़की का व्याह शहर के किस ओर करना चाहिए इस के बारे में प्रसिद्ध है कि—

कूर दिज्यन न रून्यवरि
दोह गछ्यस नद्य सारि
दवलाज कूर पान मारि

लड़की का व्याह रैनावारी में नहीं करना। वहां तो उस का दिन घड़ों में पानी भरने और फिर उसे ढोने में ही कट जाएगा। ऐसे ही

कूर दिज्यन न व्येजिबारि
दोह गछ्यस व्येजि सारि
तति कूर पान मारि

लड़की का व्याह-सम्बंध बिजबिहाड़ा में न रचाइयो। दिन भर उसे लकड़ी आदि के गट्ठे ढोने में ही कट जाएगा। यूं वह सिर ही पीटती रहेगी।

कूर दिज्यन न ईशु'बरि
सिरियि खस्यस सति गरि
य्वताम कूर ब्वोछि मरि

लड़की का व्याह ईशवर (निशात के निकट) में नहीं करियो। वहां सूर्य सात घड़ी दिन हुए उगता है और तब तक वह भूखी मरेगी।

अभी कई वर्ष पहले तक तो रैनावारी में नल नहीं थे। कहीं दूर एकाध वांबी लगी होती अतः हर घर की बहू बेटी को दूर दूर से पानी ढोना पड़ता था। ईशवर पहाड़ी के बिल्कुल दामन में स्थित है। वहां सूर्य की किरणें बहुत देर से पड़ती हैं। लड़की को व्याहने से पहले कितना सोच-विचार होता है, इस के अलावा कई इलाकों की आर्थिक या भौगोलिक स्थिति का भी उल्लेख इन उक्तियों में हुआ है।

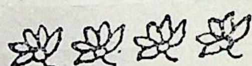
कश्मीर भर के इतिहास को देख लीजिए। धार्मिक सहिष्णुता और निरपेक्षिता का अनन्य उदाहरण आपको यहां मिलेगा। देश के दूसरे भागों की तरह यहां भी एक धर्मावलंबी (मुसलमान) दूसरों से संख्या में अधिक मिलेंगे। इसके भले ही कई ऐतिहासिक कारण हों लेकिन यह बात आज कश्मीरियों के लिए गर्व का सत्य है। राजनैतिक झगड़े अवश्य रहे हैं और शासन के प्रति विद्रोह भी लेकिन धार्मिक संकोच ने कहीं भी क्रूर रूप धारण नहीं किया। इस के कई उदाहरण हैं। सब से मुख्य कारण है कि हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक तीर्थ कहीं कहीं एक ही होते हैं और कहीं बहुत ही निकट।

कश्मीरी काव्य की आदि-कवयित्री को हिंदू लल्लेश्वरी या ललद्यद (ललदादी) और मुसलमान ललमा'ज (लल्ल माता) पुकार कर दोनों देवी सी पूज्या मानते हैं। यही कारण है कि लल्लेश्वरी के वाक्य (पद) आज मूल रूप में अप्राप्य ही माने जा सकते हैं। वे धार्मिक श्रद्धा के कारण रूप और आवरण परिवर्तित करते रहते हैं। नुन्द ऋषि को हिंदू जितनी श्रद्धा के साथ मानते हैं उतनी ही अकीदत के साथ हज़रत नूरुद्दीन के नाम से मुसलमान भी मानते हैं। हारी पर्वत के दुर्ग में हिंदुओं की देवी का मन्दिर है, उसी पर्वत की दूसरी ओर मखदूम साहब का आस्ताना है। हिंदू और मुसलमान दोनों वहां प्रातः जाते हैं। खानकाहे मुअल्ला के सामने मुसलमान भी झुकते हैं और उसी खानकाह की एक दीवार पर सिंदूर पुता है जहां हिंदू महाकाली की पूजा करते हैं। वहां उत्सव भी लगते हैं। हिंदू मुसलमान दोनों का यह मुश्तरका तीर्थ है और इसी प्रकार शंकराचार्य या तख़्ते-सुलेमान दोनों की सांझी संपत्ति है।



डोगरी की साहित्य-साधना

कुछ समस्यायें-कुछ सुझाव



रामनाथ शास्त्री

डोगरी, भारतीय आर्य परिवार की एक विकासशील भाषा है। उसके विकास की यह प्रक्रिया अभी काफी सीमित है। समस्त डोगरी-भाषी प्रदेश को भी अभी यह अपना कार्य क्षेत्र नहीं बना सकी है। इस कमी के रहते भी, डोगरी की यह साहित्यिक चेतना, अपने पास पड़ोस में तथा देश के अन्दर और बाहर चलने वाले साहित्यिक आन्दोलनों के प्रति एकदम उदासीन भी नहीं है। जहां कुछ समस्याएं और अपेक्षाएं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी भाषाओं तथा उनके माध्यम से चलने वाले साहित्यिक प्रयत्नों के लिए लगभग एक समान यथार्थ और महत्वपूर्ण होती हैं, वहां बहुत सी समस्याएं ऐसी भी होती हैं जो सभी भाषाओं अथवा भाषा-समूहों के किए, अपने-अपने क्षेत्र में अलग-अलग रूप लेकर सामने आती हैं।

पहले हम उन व्यापक तत्वों का बिवेचन करें जिनकी उपेक्षा किसी भी भाषा के साहित्यिक आन्दोलन के लिए सम्भव नहीं है। उनकी उपेक्षा करने का अभिप्राय होगा उस आन्दोलन का दिशा-हीन होना, लक्ष्य-हीन होना। साहित्य अपने युग की उपेक्षा करके उसकी गति विधियों, आस्था-विश्वासों से उदासीन होकर नहीं चल सकता। सामयिकता का समाधान जिस साहित्य में प्रतिबिम्बित न होगा वह अपने युग का प्रतिनिधि साहित्य कैसे कहलाएगा ? उसे पढ़ कर यदि पाठक को, उसके उत्पादक युग विशेष के मूल्यों का यथार्थ और आदर्श का,

उसकी मनोदशा का यत्किञ्चित् आभास भी न मिले तो साहित्य का उत्तर-दायित्व निभेगा कैसे ? युग के प्रति आँखें मूंद कर चलने वाला साहित्य ही, समाज-कल्याण की दृष्टि से प्रतीपगामी कहलाता है।

प्रश्न उठता है कि आज युग की स्थिति क्या है ? "हम एक युग-सन्धि के क्षण में खड़े हैं।"—एक विचारक ने लिखा है। दूसरे ने कहा है, "आज का नया साहित्य नये युग की उलझी-सुलझी सामाजिक परिस्थिति की देन है।" एक तीसरे ने इस नये युग का विश्लेषण करते हुए कहा है कि—"संक्षेप में इस स्थिति को 'मत-भेद', 'रुचि-भेद' और 'दृष्टि-भेद की त्रिधारा का विक्षुब्ध संगम कह सकते हैं।" ऐसा है, यह संघर्षरत मूल्यों का संक्रमण-शील युग। पुराने आस्था-मूल्य उखड़ चुके हैं, उखड़ रहे हैं और नए उनकी जगह अभी पूरी तरह से उभरे नहीं। आज के परिप्रेक्ष में आने वाले कल के बारे में भी हम जैसे अजान दर्शक-मात्र बने हुए हैं।

स्वभावत: इस अनिश्चयात्मकता अर्थात् बे-यकीनी का असर मनुष्य के चिन्तन पर भी पड़ा है और फलस्वरूप साहित्य-सृजन भी इससे प्रभावित हुआ है। आज साहित्य के सभी अंगों में नव-चेतना की इस विकलता को देखा जा सकता हैं। सभी अंगों में कथ्य और कला को लेकर कई तरह के नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं। जीवन में आई हुई यह अस्थिरता साहित्य में तो झलकेगी ही। न जीवन ही अपने लिए कोई मार्ग स्थिर कर पा रहा है न साहित्य ही। दोनों में प्रयोगात्मक उथल-पुथल चल रही है।

हिन्दी के एक कवि ने इस लक्ष्य-हीन स्थिति का चित्र यूं खींचा है :

"जैसे किसी दुःस्वप्न से जगे हों—लोग,
एक निश्चित समय पर
घरों से निकलते हैं
और भीड़ में भागते रहते हैं
सड़कों की साजिश के बीच
मकसद उनसे कोई नहीं पूछता
न वे जानते ही हैं!"

आज के विशृंखल होते समाज में व्यक्ति की लक्ष्य-हीनता की यह एक तथ्यपूर्ण तस्वीर है। इस वातावरण में आज का लेखक इसी लिए, श्री नरेन्द्र शर्मा के शब्दों में :

छन्द नया, लय नयी, कल्पना-बिम्ब नये, नव रचना,
नई दिशा की खोज, सिखाती उन्हें विगत से बचना।

विगत अर्थात् बीते समय से बचने की यह भावना आज के वर्तमान और कल के भविष्य दोनों को डांवांडोल कर रही है। 'नई दिशा की खोज' में ही जैसे हम दिशा-ज्ञान खो बैठे हैं। इसी लिए इसे 'अनास्था-युग' भी कहा गया है। इसी लिए आज का साहित्यिक अपनी साधना के मार्ग में पग-पग पर नए प्रश्न-चिह्न उठते-गिरते पाता है।

पूंजीवादी व्यवस्था के देशों में यह अनास्था कहीं-कहीं अनैतिक उच्छृंखलता का रूप भी ले रही है। वहां के साहित्य में यही मकसद-हीनता कई बार सैक्स और सैंसेशन के रंगीन लेकिन भयंकर रूप लेकर प्रकट होने लगती है।

ऐसी है यह विचित्र युग सन्धि जिसके भूकम्प से सामाजिक परम्पराएं डोल गई हैं। यह स्थिति अवश्य ही लेखकों-विचारकों के लिए भी एक गम्भीर विभ्रम बन रही है। इसी लिए आज का बुद्धि-जीवी वर्ग कई तरह के नए प्रश्नों, नई समस्याओं तथा नई चिन्तन-धाराओं से अपने आप को जैसे घिरा हुआ पाता है।

एक परेशानी इस वर्ग को यह भी है कि युग की सामयिक उथल-पुथल में वह सदा ही समाज का पथ-प्रदर्शन करता आया है। युद्ध के मूक प्राणों की वाणी बन कर बोलता रहा है। सदैव ही किन्हीं अभिनन्दनीय मूल्यों तथा आदर्शों के लिए संघर्ष-शील रहा है। और आज डूबतों को सहारा देने वाला यह वर्ग स्वयं एक बेबसी में जैसे बहा जा रहा है। लेकिन सन्तोष इतना ही है कि साहित्य-जगत् की यह साधना समस्त रूप से दिङ्मूढ़ और लक्ष्य-हीन नहीं हो गई है। कुछ बुनियादी मूल्यों के बारे में उनकी जागरूकता अभी बनी हुई है। इस जागरूकता की एक परीक्षा गत वर्ष (१९६५ ई०) के अगस्त-सितम्बर के महीनों में, पाकिस्तानी हमले के समय हुई थी।

पाकिस्तान में, राज्य की मज़हबी बुनियाद और फौजी डिक्टेटरशिप के आतंक के कारण दो पड़ोसी देशों के इस दुर्भाग्यपूर्ण संघर्ष को आसानी से 'जिहाद' का नाम देकर, काफिरों के विरुद्ध मोमिनों-गाज़िओं की इस पवित्र यलगार के न अभिनन्दन में अत्यन्त विषैले तथा नशीले तराने गाये जाने लगे थे। यह विषैला अंधड़ वहां के संजीदा अनुभवी शायरों-विचारकों को भी अपने साथ उड़ा ले गया था। हिन्दोस्तानी लेखकों-अदीबों को सब से गहरी मानसिक ठेस उस समय लगी जब उन्हें मालूम हुआ कि पाकिस्तान में श्री फैज जैसे

तरक्की-पसन्द शायर भी उसी संकीर्णता में बहने लगे हैं। इस देश के जागरूक साहित्य-सेवियों ने कई वक्तव्य निकाल कर इस बात पर गहरा दुःख प्रकट किया। ख्वाजा अहमद अब्बास ने तो फैज साहब को मशवरा दिया था कि उन्हें अपना शान्ति पुरस्कार लौटा देना चाहिए क्योंकि इस 'जिहाद' के गाज़ी बन कर अब वे उस पवित्र सम्मान का अधिकार खो चुके हैं।

इस खीज और क्रोध के वातावरण में भी भारतीय लेखकों को श्री फैज तथा उनके दूसरे उद्बुद्ध सहयोगियों से यह गिला क्यों हुआ ? किस समाजी रिश्ते के धागे टूटे थे कि यह दर्द उठा ? उस लड़ाई के दिनों में भारत के जागरूक बुद्धिजीवी, घृणा और सांप्रदायिक संकीर्णता के पागलपन से पथभ्रष्ट क्यों नहीं हुए ? क्यों उन्हें इस बात का दुःख हुआ कि पाकिस्तानी अवाम के मासूम ज़हनों में भरा जाने वाला नफ़रत और फिरकापरस्ती का यह जहर फिज़ा को इतना बिगाड़ देगा कि इन्सानियत की सांस उसमें घुटने लगेगी ?

इन्सानी रवादारी और मानव-भाईचारे के पवित्र रिश्ते को आज एशिया, योरुप, अमरीका, अफरीका, जहां भी खतरा पैदा हुआ हैं, जागरूक मानवता-समर्थक लेखकों ने वहीं उस खतरे की मज़म्मत की है और मानवता के सच्चे विकास में योग देने का यत्न किया है। नीफा, लद्दाख, वीतनाम, यमन, रोडेशिया तथा दक्षिणी अफीका सभी जगह साम्राज्यवादी तथा विस्तारवादी घमंडी शक्तियों के द्वारा किए गए आक्रमणों तथा शक्ति-प्रयोगों के विरुद्ध, विश्व की जनता की एक सांझी बिरादरी स्वीकार करने वाले जागरूक लेखकों ने एक संगठित मोर्चा बना कर आवाज उठाई है।

इस तरह हम देखते हैं कि चिन्तन की क्षमता रखने वाला मानव-जीवन आज व्यक्तिगत तथा समाजगत दो चिन्ता धाराओं में बहा जा रहा है। अनास्था, खीज, कुण्ठा इन सब का विभ्रम वहीं घना हो जाता है जहां चिन्तक सामाजिक अपेक्षाओं से अलग हो, केवल अपने 'अहम' के दर्पण में, अपने चेहरे का प्रतिबिम्ब देखता हुआ, अपनी, केवल अपनी बात सोचता है। इस अपनी बात में यदि वह किसी को शामिल करता है तो बस, अपने जैसे दीवानों-मस्तानों को जो उसी की तरह 'कोरस' के स्थान पर 'सोलो' को ही कला का नैसर्गिक, मौलिक रूप मानते हैं। यह व्यक्तिवादी चिन्तन आज जितना मुखर हो उठा है सम्भवतः उतना पहले कभी नहीं हुआ था। इसका कारण स्पष्ट है। संसार का विस्तार जितना आज सिमट गया है, उतना पहले कभी न सिमटा था। विज्ञान ने पहले की सभी दूरियों

को दूर कर दिया है। इसी लिए आज समस्त पृथ्वी मानव की हथेली पर आमलक-वत् हो रही है। न किसी देश का जन-जीवन दूसरों से छिपा हुआ है, न चिन्तन ही। इस स्थिति का एक स्वाभाविक परन्तु किसी अंश तक हास्यास्पद परिपाक यह भी हुआ है कि कुछ विदेशी विचारकों के क्रान्तिकारी नव-चिन्तन ने हमारे देश के तरुण लेखकों-कलाकारों को भी इस शिद्दत से प्रभावित किया है कि वे बिचारे अपने चारों ओर की स्थिति से जैसे जान-बूझ कर अलग पड़ गए हैं। उन्हीं विचारों के जादूई प्रभाव में वे अपने आपको इस प्रकार घिरा हुआ पाते हैं कि अपने धरातल, अपने सामाजिक परिवेश, अपने इतिहास तथा अपनी परम्पराएं सभी को अपने 'अहम्' के स्वच्छन्द मनो-विकास में बाधाएं समझने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि लड़ाई अपने आप से शुरू हो जाती है, अपनी परम्परा से, अपने सीमा-बन्धन से, अपने जीवन के सामाजिक चौखटे से। मन में नील-गगन की अनन्त गहराइयों में उड़ जाने वाले 'स्काईलार्क' की क्षमता भर पाने के दिवास्वप्नों में जीवन असन्तोष की एक गाथा बन जाता है। इस असन्तोष की अभिव्यक्ति जिस माध्यम से भी की गई, वही उसके भार से दबने, चर्राने लगता है। कविता, कहानी, चित्रकला सभी क्षेत्रों में उस असन्तोष की अभिव्यक्ति के कारण ही हम अस्पष्टता का एक विभ्रम सा छाया देखते हैं। साधक अपने कथ्य को शब्दों तथा रेखाओं में जैसे बांध नहीं पाता। बांध पाए भी कैसे ? उस कथ्य में एक अनिश्चितता जो भरी पड़ी है।

यह अस्थिरता एकदम अप्राकृतिक भी नहीं है। आज का चिन्तन शील मानव विचित्र दुविधा में पड़ा है। टूटते हुए आस्था-मूल्यों से जो शून्य जन्म ले रहा है उसे भरने के लिए अभी दूसरे टिके हुए आस्था-मूल्य उसे उपलब्ध नहीं हो रहे हैं। इसी लिए एक विचित्र संक्रान्ति-काल है यह। सामन्तवाद, पूंजीवाद, परम्परावाद, समाजवाद, साम्यवाद सभी वाद अपने अपने शिविरों में संघर्ष के लिए सन्नद्ध हो रहे हैं। उन शिवरों के अन्दर भी कई तरह की खींचातानी चल रही है। कई तरह के काम चलाऊ समझौते बनते हैं, टूटते हैं।

यूरोप की सांझी मण्डी में प्रवेश पाने के लिए बरतानिया हजार यत्न कर रहा है और उसके इस प्रवेश का विरोध उसी के पूंजीवादी सहयोगी फ्रांस और प. जर्मनी कर रहे हैं। अमरीका वियतनाम में साम्यवाद के तथाकथित प्रसार को रोकने के लिये भयंकर संघर्ष में उलझ गया है। फ्रांस, इंग्लैंड और जर्मनी, अमरीका को इस दलदल में फंसा देख मन ही मन प्रसन्न

हो रहे हैं। विश्व में अमरीका की आर्थिक प्रभुता के प्रति व्यवसायी देशों की ईर्ष्या की धधकती भट्ठी के लिए अच्छा खासा ईंधन जुट रहा है। नार्थ एटलांटिक रक्षा-सन्धि-संघ में, फ्रांस के कारण दरारें पड़ने लगी हैं। मध्यपूर्व में जोर्डन, सीरिया, ईराक, सऊदी अरेबिया, मिस्र सभी देशों में अरब राष्ट्रीय हितों ने अपने आपको दो प्रतिद्वन्द्वी दलों में बांट लिया है। एक दल है अरब सामन्तों के राजकीय स्वार्थों से बंधा हुआ और दूसरा दल है जनतन्त्रात्मक शक्तियों का। पहले दल का नेतृत्व सऊदी अरेबिया के शाह कर रहे हैं, दूसरे का मिस्र के प्रधान श्री नासिर। टर्की, ईरान तथा पाकिस्तान परस्पर एक सैनिक सन्धि में बंधे हैं। रूस की शक्ति के प्रसार को रोकने के लिए अमरीका तथा बरतानिया द्वारा खड़ा किया गया यह जैसे एक कच्चा बांध है। इधर पाकिस्तान साम्यवादी चीन से पींगें बढ़ा रहा है और भारत रूस में दृढ़ होते मैत्री-सम्बन्धों को देख कर रूस से भी पारस्परिक सहयोग बढ़ाने का मार्ग ढूंढ रहा है।

साम्यवादी देशों के संगठन को भी अपने अन्दरूनी वैमनस्य और द्वेष ने आज जिस प्रकार विकल कर रखा है वह अभूतपूर्व है।

सारा अफ्रीका महाद्वीप अनेकों छोटे २ राष्ट्रों में बटा हुआ, युगों लम्बी पराधीनता और अज्ञान-तमिस्रा के बाद स्वतन्त्रता के नये प्रभात के चमकीले प्रभाव से जैसे चुन्धिया सा गया है। कबीलों के सदियों पुराने राग-द्वेष अपने दुराग्रह के सीमित घेरों से बाहर नहीं निकल पा रहे। उपनिवेशवादी शक्तियां अफ्रीका, मध्यपूर्व तथा अन्यत्र सभी जगह आत्मरक्षा के लिए आकुल-व्याकुल होकर अपनी कूटनीतिक किलेबन्दियों को दृढ़ कर रही हैं।

एशिया तथा अफ्रीका के विकासशील देशों में, बढ़ती जनसंख्या तथा पिछड़ी हुई कृषि तथा अविकसित उद्योग-धन्धों के कारण जन-जीवन को दिन-प्रतिदिन नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। विकसित देशों से सहायता- सहयोग आसानी से मिलता नहीं। वे उस सहयोग के लिए जो मूल्य मांगते हैं उसका सीधा अर्थ है एक नई तरह की पराधीनता। राष्ट्रीय गौरव का अंश देकर जो सहायता मिलती है वह राष्ट्र की प्रगति में बाधक बनती है। समृद्ध पश्चिमी देश अपने उपनिवेशवादी स्वार्थ की पराज्य का प्रतिशोध, अविकसित देशों की अर्थनीति की विवशता का अनुचित लाभ उठा कर ले रहे हैं। पठित तरुण वर्ग जिन महत्वाकांक्षाओं को हृदय में लेकर जीवन के क्षेत्र में

उतरता है, वहां उन सुन्दर फूलों का कहीं नामनिशान नहीं मिलता। सन्तोष, सादगी व हाथ का परिश्रम—ये सभी बातें आज इस युवक वर्ग को पिछड़ेपन के चिह्न दीखती हैं। अतीत से वह कट चुका है, भविष्य उसके सम्मुख अत्यन्त धुन्धला है। परिवार की इकाई दुर्बल पड़ती जा रही है। जीवन का तौर तर्ज़ नवीनता की अन्धी लालसा में अपनी नैसर्गिकता को खोता जा रहा है। अपनी असमर्थता की खीज, जीवन को और भी कटु बना रही है। इस कटुता से घबरा कर तरुणवर्ग जीवन के वास्तविक संघर्ष से हट कर, सस्ते अत: हल्के स्तर के मनोरंजन ढूंढता है। सस्ता-हल्का साहित्य, सस्ते-हल्के चित्र, सस्ते-हल्के खेल-तमाशे, सस्ते-हल्के कहकहे, सस्ते-हल्के सहचर, सस्ते-हल्के मनसूबे और योजनायें। बढ़ती हुई बेकारी, मुद्रास्फीति के कारण वस्तुओं के चढ़ते दाम, अधूरी और अनुपजाऊ शिक्षा का क्षोभ—इन सभी तत्वों ने पिछड़े देशों के पढ़े-लिखे तरुण-वर्ग को जैसे दिङ्मूढ़ कर दिया है।

स्वाभाविक है कि जो लेखक अपने आपको इसी विभ्रम के कुहरे में घिरा हुआ पाते हैं। उनकी साधना के रंगों तथा स्वरों में उलझनें, निराशा, कुण्ठा, बेचैनी, एक आलोक की एक विकल ईहा बड़ी मुखर होगी। यह बात उन देशों में विशेषरूप से व्यापक और उग्रता लिए है, जिनकी अर्थ-व्यवस्था पूंजीवादी ढंग की है। क्यों कि, इसी अर्थ-व्यवस्था में व्यक्ति स्वातन्त्र्य को सामूहिक सामाजिक उत्तरदायित्वों से ऊंचा स्थान दिया जाता है। ऐसी ही अर्थ-व्यवस्था में, सामाजिक उत्तरदायित्वों की बात व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए ख़तरा समझी जाती है। बुद्धिवादी विचारधारा, समाजवादी आदर्शों के पोषक कला-प्रयत्नों को हेय समझती है और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में इन बुद्धिवादी विविध प्रयोगों को उच्छृंखलता तथा व्यक्ति की क्षमताओं का दुरुपयोग मानती है। "डा० ज़िवागो" जैसी रचना का किस्सा इस विचार-संघर्ष का बड़ा स्पष्ट उदाहरण है।

इस विवेचन के परिप्रेक्ष में हम डोगरी लेखकों के साहित्यक प्रयत्नों को देखें, तो एक बात बड़े स्पष्टरूप से हमारे सामने आएगी कि इन में भी इन्हीं दोनों तरह की विचारधाराओं के प्रभावचिह्न परिलक्षित होंगे। कई बार इन में से कई साधकों की रचनायें पढ़ कर यूं लगता है जैसे वे किसी दोराहे पर खड़े होकर, कभी एक पथ पर थोड़ी दूर आगे बढ़ते हैं तो कभी अपनी ही अन्त: प्रेरणा से उन्हें लगता है कि प्रशस्त पथ दूसरा है। इसे दुविधा कहें या प्रयोगात्मक जिज्ञासा, प्राय: उन्हीं साधकों में परिलक्षित हुई है जो सामयिक साहित्यिक

गतिविधियों के विषय में पढ़ते-सुनते हैं। उन्हें उन नये प्रयोगों की स्वच्छन्दता खींचती है, उन नए प्रयोगों की निर्बन्ध शैली मुग्ध करती है, और वे इस आकर्षण में खिंच कर उस नई शैली में अपने कथ्य को ढालने का प्रयोग करते हैं। ऐसा नहीं है कि उनके ये प्रयोग केवल अनुकरणात्मक हों। कई बार उन्हें इन प्रयोगों में मौलिकता के रंग भरने में भी सफलता मिली है, परन्तु इस बात से उन्हें शायद इन्कार नहीं होगा कि इन प्रयोगों के पीछे प्रेरणायें उन्हें अपने चारों ओर के जन-जीवन से नहीं मिलीं।

उन्हें यह अहसास भी बना रहता है कि नये प्रयोगों की शैली और कथ्य दोनों उन्हें सामान्य पाठक से अवश्य दूर ले जाते हैं। और अपने उसी सरल पाठक की बौद्धिक सामर्थ्य की अवहेलना कर पाने में असमर्थ, डोगरी का यह जागरूक साधक व्यक्तिवादी प्रयोगपथ से पुनः सामाजिकता की चौपाल में लौट आता है।

कुछ डोगरी साहित्यकारों को, इस तरह, अपने मन की इस सामयिक दुविधा से दो चार होना पड़ रहा है।

अपने मन की स्वच्छन्दता उसे यदि एक ओर ले जाकर बहकाती है कि—"तुम केवल अपनी बात कहो, अपनी उलझनों का विश्लेषण करो, इस फैलती हुई नई धारा के साथ चलो, परम्परा के इस कारागृह का मोह तोड़ो। समाज अपनी चिन्ता स्वयं कर लेगा, तुम्हारी और तुम्हारे इस पिछड़े समाज की गति में भला तालमेल ही क्या है? वह पुरानी बैलगाड़ी और तुम ध्वनि से भी तीव्र-गतियान सदृश। यह समाज आज नहीं तो कल तुम्हारी बात समझेगा। तुमने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि भवभूति की उक्ति नहीं सुनी कि—"उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा" कोई तेरे मन की बात समझने वाला भी कभी, कहीं पैदा होगा ही। संस्कृत के इस मनीषी कवि की यह उक्ति प्रत्येक युग में सच्चे साधकों की बन्धनमुक्त साधना के विषय में इसी सत्य की घोषणा करती रहेगी। हर बड़े साधक की साधना अपने समय से बहुत आगे होकर चलती है, बहुत आगे होकर सोचती है। वर्तमान की अपेक्षा, भविष्य को महत्त्व देती है। तुम भी 'आज' के मोह को छोड़ दो। समाज को साथ लेकर चलने की ईहा एक दम्भ है, इस दम्भ से बचो। अपनी आत्मा को पंगु मत बनाओ, अपनी कल्पना के पंख मत काटो। अपने मन को इन तंग घेरों में मत बांधो।"

चिन्तन के गगन में चलने वाले इस अन्धड़ के शांत होने पर अपने चारों

ओर के खेतों से, मौन मुग्ध पर्वतमालाओं से, निरीह जनसमाज की ममता भरी नज़रों से, मेहनतकशों के मधुर मस्ताने गीतों से, एक और तरह की आवाज़ भी डोगरी के इन साधकों को सुनाई देती है। यह आवाज उससे जैसे पूछती है—"मेरा धरती के होनहार कलाकार! तेरी इस साधना पर हमें सौ सौ नाज है। युगों के मौन को तोड़ कर यह धरती तुम्हारी वाणी के माध्यम से बोलने लगी है। इस मौन मुग्ध वातावरण की घुटन, इसकी वेदना के नीचे एक अत्यन्त सप्राण कहानी दबी पड़ी है। अहिल्या की तरह वह भी शापग्रस्त है। युगों से मौन तपस्या में जैसे डूबी हुई है। तुम्हारी पुनीत साधना ही इस शाप को तोड़ने वाले राम के चरण बनेगी। उसकी सुधि ले, उसे जगा, उसे संबल दे। दुनिया की कहानियों में एक नई सुन्दर गौरवपूर्ण कहानी की वृद्धि होगी। इन पहाड़ों की छाती में लाचारी और बेबसी की चट्टानों में दबे कोमल गीतों के, न जाने कितने झरने रुके दबे पड़े हैं। इन शिलाओं को तेरी ही साधना तोड़ सकेगी। तू इस धरती को छोड़ कर अपनी व्यक्तिगत लालसाओं के नील गगन में उड़ जाने के ये मोहक किन्तु भ्रामक निमन्त्रण कभी मत सुनना। निराशा उसी साधक के भाग्य में होती है जो आत्म-केन्द्रित होता है। जिसकी साधना का लक्ष्य अपना समाज अपनी धरती होगी, निराशा उससे सदा दूर रहेगी।

डोगरी के लेखक के लिए ये दोनों आवाज़ें एक समस्या-सी पैदा कर देती हैं। इन में वह किस को सत्य माने और किस को झूठ? इस दुविधा के भ्रमजाल से निकल कर ही डोगरी के तरुण साधक श्री वेद राही ने "अपना-अपना सच" शीर्षक लेख में यह स्वीकारोक्ति की थी :

"मुझे अच्छी तरह याद है मैं वर्षों भूल भुलैयों में उलझा रहा।........ मुझे यह वहम रहता था कि मेरे आसपास सब झूठ है, कि मैं आंख बन्द करता हूं तो सब गायब हो जाता है और आंख खोलता हूं तो सब यथास्थान आ मौजूद होता है।"

"अब मुझे याद नहीं कि मैं कब भूल-भुलैयों के उस चक्र से निकला था, लेकिन काफी वर्ष बीत गए लगते हैं। अब कहानियों के पात्र मुझे खोजने नहीं पड़ते, परिस्थितियों की तालाश मुझे नहीं रहती। अब मैं जान गया हूं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में किसी छोटे बड़े संघर्ष में रत रहता है। वह कभी थक भी जाता है, हार भी जाता है और टूट भी जाता है, लेकिन उसके संघर्ष की कहानी समाप्त नहीं होती। वह अपने क्षेत्र में अनेक अन्यों से जुड़ा रहता है।... अपने तौर पर कहानी लिख कर मैं अपने आप को दूसरों के समीप पाता हूं।

मुझे वह अपनी कहानी भी लगती है, और दूसरों की भी। मेरे विचार में संसार की पहली कहानी का जन्म तभी हुआ होगा जब किसी के मन में किसी के प्रति सहानुभूति जगी होगी, या कोई लगाव पैदा हुआ होगा। कहानीकार और कहानी के पात्रों में एक गहरा रिश्ता रहता है। दोनों समय और स्थिति के धागों में बंधे होते हैं। एक सम्बन्ध धरती का भी होता है। धरती की गन्ध भी हमें एक सूत्र में बांधती है। मुझे याद है जब मैंने अपनी मातृभाषा डोगरी में पहली कहानी लिखी तो मुझ पर एक नशा सा छा गया था।"

श्री राही जिन भूलभुलैयों में फंस गये थे, वे बहुत से अनुनभवी, निश्चित लक्ष्य से अपरिचित साधकों को इसी तरह ठग लेती हैं लेकिन जीवन के वास्तविक संघर्ष की अनुभूति होते ही ये भूल-भुलैयां काफूर हो जाती हैं। मज़ा यह है कि दूसरों के अनुभवों से लाभ उठा कर जीवन-पथ निर्धारित करना उतना सरल नहीं होता। इसके लिए 'आत्मानुभूति' ही महत्वपूर्ण तथ्य है। भरोसा उसी से पैदा होता है।

डोगरी के कुशल कहानीकार श्री मदनमोहन के साथ भी इन्हीं भूलभुलैयों ने छेड़खानी की है। एक बार तो वह इस निश्चय तक बढ़ गए थे कि डोगरी में लिखना ही एक भूल है। "किस के लिए लिखें ? कहां हैं पढ़ने वाले ?" एक खीजपूर्ण प्रश्न था यह, जो उन्होंने अपने आप से पूछा था। इन लेखकों की इन मानसिक वेदना को डोगरी क्षेत्र से बाहर के साधक शायद भली प्रकार न समझ सकें। डोगरी की साहित्य-साधना को, इसी मनोदशा ने अनेकों बार डराया धमकाया और त्रस्त किया है, जिन साधकों ने बरसों की अथक तथा अपुरस्कृत साधना से डोगरी भाषा की साहित्यिक दरिद्रता दूर करने का भगीरथ प्रयत्न किया है, वही जब इस प्रकार थक कर हार कर टूटने लगते हैं तो जैसे इन धरती की धड़कन तेज़ हो जाती है उसकी आंखों में अपने ही आंसुओं के पर्दे घिर आते हैं।

श्री मदनमोहन जागरूक लेखक हैं। उनका विवेक इस धक्के को सह गया। क्यों कि "जीवन के धरातल के समीप रहने और अपनी धरती की कोमलता और कठोरता से परिचित हो सकने की" सरल आकांक्षा उनके मन में थी। उनके लेखक की यही निच्छल इच्छा रही है कि "वह अपने आप को दुनिया के लाखों-करोड़ों प्राणियों में से एक समझ सकें, ऐसे प्राणी जिनके छोटे-छोटे घर हैं, जो बड़े इत्मिनान से, धीरज से, जीवन के सुख दुःख झेलते हैं।"

श्री मदनमोहन ने स्वीकार किया है कि—"ये भूल-भुलैयां बार बार सुनहरे जाल लेकर मेरी ओर आई हैं। इन्हों ने मेरे मन में अनगिनत स्वप्नों की लड़ियां सजा दीं, ऐसी लड़ियां जो सागर की उन सतरंगी लहरों का उपहास करें, जिन्हें उन सुन्दर टापुओं के पैर पखारने पड़ते हों, जहां रंगीनी-मस्ती, फूल और अल्हड़पन के अतिरिक्त और कुछ न हो। उन हरे भरे मैदानों के सपने जहां रेशम सी कोमल दूर्वा पर, यौवन में उन्मत पर्वतीय प्रमदायें, अनजाने परदेसी प्रियतम का प्यार पाने को आतुर रहतीं हैं। संगमरमर की उन गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के सपने, जिनमें विरह व्यथा से व्याकुल परियां अपने राजकुमारों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं, जब वे आकर उन्हें अपने उड़न-खटोलों पर बिठा कर कहीं दूर क्षितिज के पार ले जायेंगे। जब जब भी मैंने इस सुनहरे इन्द्रजाल को तोड़कर अपने आपको कठोर सत्य की ठोस जमीन पर खड़ा करना चाहा, तभी इसने, एक ही झटके में मेरे सारे बन्धन तोड़ डाले और अपनी कल्पना के पंखों पर उड़ाता हुआ वह मुझे उन स्वप्निल-तन्द्रिल घाटियों में घुमाता फिरा, जिनका मेरी यथार्थ दुनिया में कभी कोई अस्तित्व नहीं था...।

आज मैं इस के विषय में सोचता हूं तो मुझे अपने ऊपर ग्लानी होने लगती है। दिल पीड़ा से भर जाता है कि मैं इतना मूर्ख और दुर्बल क्यों था कि जो रंग-बिरंगे खिलौने तथा मखमली सपने वह मुझे दिखला रहा था, और रोमांस से अटे जो किस्से-कहानियां सुना रहा था, वे सब झूठे थे, निराधार थे!"

कितने लोग जानते होंगे कि प्रो० मदनमोहन इस छलिये के जाल में फंस कर अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ कर, घर से भाग निकले थे। एक बार नहीं, तीन बार। पहली बार लुधियाना तक, दूसरी बार दिल्ली तक और तीसरी बार बम्बई तक। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तरह भागने से भी उन्हें कई महत्वपूर्ण अनुभव हुए। जीवन की कई तरह की झांकियां देखने का उन्हें अवसर मिला। उसी अनुभव ने उन्हें बम्बई से घर लौट कर एक मामूली स्कूल-मास्टर बन कर जीवन के संघर्ष में शामिल हो जाने की प्रेरणा दी। उनका सौभाग्य था कि उन्हें स्कूल मास्टर बन कर जीवन के संघर्ष में शामिल हो जाने की प्रेरणा मिली। उन्हों से स्वीकार किया हैं कि—"स्कूल मास्टर बनकर मैंने पहली बार अपने आप को और अपने आस-पास की दुनिया को देखा। मैंने 'इश्क' की झूठी काल्पनिक कहानियां लिखना छोड़ दिया। मैं उन लोगों की कहानियां लिखने लगा जो मेरे अपने थे, मेरे आस-पास थे। मेरी इन नई कहानियों की वही भाषा थी, जिसे ये

लोग बोलते थे, जिसमें ये लोग सोचते थे, जो मेरी मातृ-भाषा थी।"

आज जब मुझे डोगरी के साहित्यिकों की समस्याओं के विषय में अपने विचार आपके सम्मुख रखने का अवसर दिया गया है तो मैं बड़े आत्म-विश्वास के साथ कहता हूं कि डोगरी की साहित्य-साधना के पथ की सबसे बड़ी बाधा, साधकों को भरमाने वाले यही मोहक भ्रामक आकर्षण हैं, यही व्यक्तिवादी बौद्धिक इन्द्रजाल हैं। इसे मैं इसलिए भयप्रद मानता हूं क्योंकि मेरा विश्वास है कि जनतन्त्र के इस नवयुग में डोगरा जाती का वास्तविक संबल उसके जीवन में आलोक फैलाने वाली यही नई "साहित्यिक नवचेतना" है। इस जाति के गौरव का यही दर्पण होगा। इस विशाल देश में यदि डोगरों को भी दूसरी उन्नत जातियों के समकक्ष रह कर अपने जनतंत्री उत्तरदायित्व निभाने हैं तो उनके पास उनकी भाषा और उस भाषा में लिखे उद्‌बुद्ध साहित्य का गौरव होना आवश्यक है। यदि यह भाषा उपेक्षित रहे और इसके माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की यह साधना अविकसित रहे तो इस धरती पर जन्म लेने वाली अनेकों प्रतिभाएं प्रकाश में ही न आएंगी। धरती का इससे बड़ा और दुर्भाग्य क्या होगा ? न जाने आज तक इसी व्यापक उपेक्षा के कुहरे में कितनी कलियां बिना खिले ही मुरझा गई हैं। डोगरों का इतिहास निरीह शोषित जन-जाति का दयनीय इतिहास है। इस शोषण का सबसे क्रूर अध्याय उन्हीं अज्ञात प्रतिभा-कलिकाओं के दुर्भाग्य की अनकही, अनसुनी कथाओं की मौन घुटन है।

इन बीस बरसों में जिस भाषा की ममता ने लोरी दे देकर बीसियों सुरभित साधना-पुष्पों से इस धरती को भाग्यवती किया है, वह धरती किसी युग में भी बांझ न रही होगी, लेकिन जब तक अपनी भाषा के विकास-बादलों का गर्जन न हो तब तक साहित्यिक साधना के केकी नाचते-गाते नहीं।

मैं इस स्थिति को डोगरी साहित्य-साधना के लिए सबसे अधिक खतरनाक समझता हूं कि जब इस के कर्णधार साधक हिम्मत हारने लगते हैं, जब उनका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है।

आज की स्थिति अवश्य ही साधकों की साधना को संबल देती प्रतीत होती है। आज उसे बार-बार अपने साधना-पथ में छा जाने वाली निराशा के कुहरे में चमकते नए आदेश-अक्षर दीखने लगे हैं। "तुम्हारी अपनी साधना ही अपने पाठक भी पैदा करेगी।" अज्ञान में डूबी अपनी धरा के आंगन में नई चेतना का अलोक लेकर तुम नहीं तो और कौन जाएगा ? तुम सूरज नहीं हो, लघु दीपक हो। इस

लिए सूरज की तरह एकदम अन्धकार की घनी परतों को छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकेगा, लेकिन किया हुआ प्रयत्न अकारथ नहीं जाएगा। तुम उस नन्हीं चिड़िया को देखो जो अपने होने वाले बच्चों के लिए, तिनका-तिनका चुन कर घौंसला बनाती है। संसार में ९९ प्रतिशत लोग ऐसे होते हैं जो होते-जीते और मर जाते हैं। तुम उन एक प्रतिशत में से हो जिन्हें रचनात्मक कला-साधना की क्षमता नसीब हुई है। वर्तमान और भविष्य दोनों की नजरें तुम्हारे ऊपर लगी हैं।

मुन्शी प्रेमचन्द अपने देहाती घर में बैठ कर जिन कृषकों-मजदूरों के दुःख-दर्द भरे जीवन की कहानियां लिखते थे, प्रातः उनके मकान के पास से गुजरते हुए वे ही किसान उनकी खिड़की में से झांक कर उन्हें वहां कागजों पर झुका देकर तरस खाकर कहते थे—"अरे, कैसा आलसी, अभागा जीवन है इन लोगों का। जब देखें तब कलम घिसते ही दीखें। कोई काम धंधा भी ये करते हैं?" मु० प्रेमचन्द ने इस बात का स्वयं उल्लेख किया था लेकिन इन्होंने निराश होकर लिखना तो बन्द नहीं किया था। उन्हें भरोसा था कि वे अपना कर्तव्य निभा रहे हैं, कर्तव्य निभाने में विकल्प कहां होता है? पुरस्कार की साध उसमें क्यों हो? पुरस्कार की धारणा ही तो वस्तुतः गतिरोध पैदा करती है। डोगरी के साधकों का सौभाग्य था कि वे एक "समवेत साधना" के पोषक बन कर चलते आए हैं। जाति की, भाषा की, उदीयमान नए साहित्य की यह जागरूक नवचेतना उसी समवेत साधना का फल है। इस पथ पर 'एकला चलो रे' की बात इन प्रबुद्ध साहित्यिकों ने कभी नहीं सोची। अभी एक ही प्रशस्त पथ उनके सामने है, अपनी धरती को नया सचेतन वातावरण देने की ईहा का पथ। नए बौद्धिक प्रयोग करने की बात इस स्थिति में कितनी हास्यास्पद होगी? कुछ प्रयोग इस दिशा में कुछ मनचलों ने किए हैं लेकिन उन प्रयोगों से घड़ी भर के लिए, एक चमत्कार चाहे पैदा कर लिया जाए, उसे इस साधना का अभिन्न अंश नहीं बनाया जा सका। हमें तो अपने साथ अपने वातावरण को लेकर चलना है। वातावरण में अनोखे, अनजाने स्वर जगा कर कौतूहल का केन्द्र बनने की सस्ती लालसा के लिए अभी हमारे हां स्वागत-सत्कार नहीं है।

डोगरी के साहित्य-साधकों के, इस प्रकार एक निश्चित लक्ष्य को सामने रख कर इस साधना में प्रवृत्त होकर चलने पर भी कभी कभी ऐसे उदाहरण हमें देखने को मिले हैं कि कई लेखक-साधक अपने व्यक्तिगत अकीदों, विशेषरूप से सयासी अकीदों के उन्माद में सरल भावनाओं को नए चटकीले रंग देने का

प्रयत्न करते हैं। अनेक बार, उन चमकीले रंगों के कारण, तस्वीर की अपनी मौलिक भावना ही उभरने से रह गई। आज से ५०० वर्ष पहले हुए बाबा जित्तो के बलिदान को, वर्ग-संघर्ष के प्रबुद्ध कृषक-नेता की कहानी बनाने का प्रयत्न इसी लिए साकार नहीं हुआ। इतिहास का तथ्य एक सीमा तक ही तो तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। मैं मानता हूं कि साहित्य में नाराबाजी का कोलाहल पाठकों के कानों को प्राय: मधुर नहीं लगता। विषमता का संघर्ष अपने रूप में भी प्रबुद्ध पाठकों में न्याय-अन्याय की तकरार को स्पष्ट कर जाता है।

इसी तरह डोगरी साहित्य की इस गतिशील साधना को कभी २ उस हठीली कलम से भी डर लगने लगता है जो अपने सीमित ज्ञान को बहुज्ञता मान कर चलती है।

साहित्य साधना करने वाले साधकों को, इस सेवापथ को अपनाकर, इस पर चलने की योग्यता पैदा करने के लिए, अपने अन्दर उत्तरोत्तर क्षमता पैदा करने की आवश्यकता होती है। 'स्वाध्याय' करने के महत्व को समझना उन के लिए अनिवार्य है। मुझे याद है, एक हिन्दी कवि ने एक बार बड़े मौलिक रूप से स्वीकार किया था कि वे दूसरों का साहित्य इसलिए नहीं पढ़ते क्योंकि उन्हें उस से अपने विचारों की मौलिकता के प्रभावित हो जाने का खतरा रहता है। डोगरी के साधकों को हिन्दी के उस साधक की तरह 'स्वाध्याय' से अपनी मौलिकता के खतरे में पड़ने की इस मूर्खतापूर्ण धारणा से बचना चाहिए। कालिदास ने, जिन्हें 'कवि शिरोमणि' कहा जाता है, देखा परखा जाए तो एक भी मौलिक रचना नहीं दी है। उन की सभी रचनायें पुराने प्रचलित कथानकों पर आधारित हैं। फिर भी उन की मौलिकता के बारे में किसी को सन्देह नहीं हुआ। मौलिकता का गुण किसी से छिपा नहीं रहता। रामायण, महाभारत आदि से लिए गये कथानकों में भी कालिदास की प्रतिभा की मौलिकता फूलों में बसी सुरभि की तरह मुग्ध करने वाली है। 'स्वाध्याय' न होने से सामान्य साधक की कल्पना के पंख कमजोर पड़ जाते हैं। उस में नई उड़ानें भरने की क्षमता कम होती जाती है। अल्पज्ञता साधक की शत्रु है, उस की साधना के पैरों में पड़ी हुई लोहे की जंजीर है। इस जजीर से आप भी हमारे बहुत से साधक जकड़े हुए हैं। उन्हें इस बन्धन से छूटने का यत्न करना चाहिए, अन्यथा वे कोल्हू के बैल की तरह चलेंगे तो बहुत, लेकिन रास्ते पर आगे नहीं बढ़ेंगे।

हमारे साधकों का एक छोटा-सा वर्ग वह भी है जो थोड़ा-बहुत लिखकर अब जैसे थक-हार गया है। थकने-हारने की बात अस्वाभाविक नहीं होती। अपनी २ क्षमता, तथा पथ की दुर्गमता- सुगमता दोनों पर यह बात निर्भर करती है कि कोई कब थक जाएगा ? वैसे कई बार, राह की कठिनाई भी साधक को उकसाती है कि—"तुम अब थक गए हो, तुम्हें विश्राम की जरूरत है। काफी चल चुके हो।"

'काफी चल चुके हो' वाली बात जब साधक को छलने लगती है तो समझना चाहिए कि वह स्वयं अपने आपको ठगने का प्रयत्न कर रहा है। 'काफी चल चुके हो' में यह 'काफी' किस बात का सूचक है ? जो काफी चल लेते हैं उन्हें प्राय: थकते और विश्राम करते नहीं देखा गया। क्योंकि जीवन में जब तक इस चलने का महत्व बना रहता है, तब तक गतिशीलता ही जीवन बन कर नई प्रेरणायें दे जाती है। लेकिन साहित्य- साधना तो कोई लाभ का धन्धा नहीं। और संसार में निस्वार्थ धन्धे के लिए रुचि रखने वाले बहुत कम लोग होते हैं। डोगरी की साधना में भी इस तरह की अस्वाभाविक थकावट कहीं २ दृष्टिगोचर हुई है। इस से इस साधना को काफी दु:ख हुआ है। उन साधकों को भी घाटा कम नहीं रहा। जिस साधना में वे सम्मान्य स्थान पा चुके थे, वहीं उन की असामयिक साहित्यक 'रिटायरमैंट' अथवा साधना-विमुखता ने उनकी उस कीर्ति- सम्पद में काफी कमी की है।

डोगरी साहित्य-साधना का घेरा अभी बहुत छोटा है। इसलिए इस क्षेत्र में आने वाले और यहां से जाने वाले, सभी की ओर नज़रें काफी घूर-घूर कर देखने लगती हैं। यह साधना अभी ऐसी स्थिति में है कि इस क्षेत्र में आ जाने वाले साधकों पर अपने आप काफी उत्तरदायित्व आ जाते हैं। उस साधक के लिए फिर यह सोचना भी कठिन हो जाता है कि इस में उस की अपनी इच्छा अनिच्छा भी चलेगी। क्योंकि बने हुए बाग की, फूलों से सजी सजाई क्यारियों में घूमने के लिए आने वालों में और उस बाग की रूपरेखा बनाकर उन क्यारियों में फूलों के पौदे उगाने में लगे मालियों में एक मौलिक अन्तर होता है। डोगरी के नए साधक, आज डुग्गर की धरती पर एक नये उपवन को बना सजा रहे हैं। जो लोग इस काम में शामिल हो कर अपनी इच्छा से, इसे छोड़ कर चले जायेंगे, उन्हें उन के दूसरे सहयोगी किस दृष्टि से देखेंगे ? किसी व्यक्तिगत लाभ के कारण इस साधना से विमुख होने से तो और भी बुरा उदाहरण पैदा होगा।

दूसरे साधकों को भी इस तरह के दृष्टांत देख कर अपनी आस्था के प्रति एक सन्देह, एक अविश्वास पैदा हो सकता है।

डोगरी की इस साधना में, इस तरह का दृष्टांत किन्हीं वयोवृद्ध साधकों की ओर से पेश नहीं किया गया। वयोवृद्ध साधकों के दृष्टान्त तो काफी प्रेरक रहे हैं। डोगरी साहित्य-साधकों को अपने सहयोगियों को इस पलायन पथ पर जाने से रोकने का भी यत्न करना होगा।

जब तक इस क्षेत्र में नए साधकों के उन्मेष की गति तेज नहीं होती, तब तक इस क्षेत्र में आकर काम करने वाले साधकों को न थकना चाहिए, न विश्राम के लिए अन्यत्र शीतल छाया में जा लेटना चाहिए।

डोगरी साहित्य- साधना को अपना प्रसार बढ़ाने का यत्न करना चाहिए। नई प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उचित उपाय करने चाहियें। इन यत्नों के विषय में मैं यहां कुछ भी कहना मुनासिब नहीं समझता। 'डोगरी संस्था, जम्मू' जैसे साहित्यिक सगठन इस दिशा में जो यत्न कर रहे हैं वे और बढ़ाए जा सकते हैं। डोगरी भाषी प्रदेश में, जहां २ सम्भव हो, साहित्यिक-केन्द्र बनाने में स्थानीय साहित्यिक पुरुषार्थियों का हाथ बटाया जाय। उन्हें हर तरह का सहयोग तथा प्रोत्साहन दिया जाय।

सरकार पर दबाव डाला जाए कि वह अपनी घोषित नीतियों के अनुसार प्राइमरी स्कूलों में डोगरी और कश्मीरी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाए जाने के लिए उचित प्रबन्ध करे। प्राइमरी से आगे हाई स्कूलों में भी इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाने का यत्न किया जाय। यूनिवर्सिटी स्तर पर डोगरी कश्मीरी में पहली परीक्षायें चालू हो गई हैं। इस स्तर पर अगली परीक्षाओं के लिए भी प्रचार-प्रसार के यत्न किए जाने चाहिएं। उसके लिए व्यक्तिगत रूप से साधक उतना काम नहीं कर सकेंगे जितना लेखकों की सभा संस्थायें। इन परीक्षाओं को देख कर तदनुरूप पुस्तकों को लिखने-लिखाने की योजना सामूहिक रूप से लेखक-संघ (संस्थान) ही बना सकते हैं। डोगरी के साहित्यिकों को डोगरी के अदबी प्रसार के लिए मिलने वाले इस अवसर के योगक्षेम के बारे में बड़े सतर्क-सावधान होकर प्रयत्न-शील रहना होगा। डोगरी के साहित्यिक विकास में इन परीक्षाओं से जो सहायता मिलेगी उसके महत्व को आज हम शायद भली प्रकार न पहचान सकें। लेकिन आने वाला 'कल' इस कार्य की गरिमा से अवश्य ही कृतार्थ होगा।

अन्त में मैं अपने सहयोगी साहित्यिकों से निवेदन करना चाहूंगा कि आज तक उन्होंने प्राय: जो कुछ लिखा वह अधिकतर अपनी इच्छा से, अपनी व्यक्तिगत प्रेरणाओं से प्रेरित होकर। इस साधना में साधक की यह अन्त: प्रेरणा बड़ी मूल्यवान वस्तु है। लेकिन आज समय की मांग यह भी है कि इकट्ठे बैठ कर, अपनी पिछली साधना का जायजा लें और देखें कि इस अन्त:प्रेरणा से जो साहित्यिक पूंजी बनी हैं उसमें किस अंग की कमी रह गई है। कविता, कहानी ये दो विधायें, दूसरी विधाओं से सम्भवत: अधिक लोकप्रिय होती हैं। नया साधक इन्हीं दोनों क्षेत्रों में अपने लिए स्थान बनाने का प्रयत्न करता है लेकिन नये साहित्य का विकास तो सभी अंगों को साथ लेकर होना चाहिए। आज डोगरी की इस नई साहित्यिक चेतना में, कविता-कहानी के अतिरिक्त, नाटक, एकांकी, उपन्यास, निबन्ध, जीवनी, रेखा-चित्र, आलोचना, काव्यशास्त्र, इतिहास, आदि अंगों को पुष्ट करने की बड़ी आवश्यकता है। मुझे यह भली प्रकार एहसास है कि इस तरह के प्रयत्नों से जो साहित्य रचा जाता है वह, प्रयत्न-साध्य होने के कारण उतनी मौलिक सजीवता से सप्राण नहीं होता। लेकिन हम तो मजबूरी की दशा में रह कर बास कर रहे हैं। हमें तो उसी उत्तरदयित्व को निभाना है जो वर्तमान ने हमारे कन्धों पर ला रखा है। आज हमें अनिच्छा से भी उन सभी अंगों को परिपुष्ट करने का यत्न करना है जिनके अभाव में डोगरी साहित्य का वर्तमान रूप अधूरा-अधूरा है। यूनिवर्सिटी स्तर की परीक्षाओं की अपेक्षा की पूर्ति के लिए इस अधूरेपन की रुकावट को आज ही दूर किया जाना चाहिए। आज हम इस प्रकार योजनाबद्ध ढंग से जो कुछ प्रयत्न करेंगे कल, नई पीढ़ी उसमें मौलिक प्रतिभा से नए प्राणों का संचार करके उसे सार्थक कर लेगी। डोगरी की नव चेतना को आगे आने वाले प्रेमचन्द और राजेन्द्रसिंह बेदी के लिए इस धरती को अपने श्रमजल से इसे सींचना है। 'आज' का उत्तरदायित्व जो उन पर है। उन्हीं साधना की नींव पर 'कल' का वह कमनीय भवन खड़ा होगा। एक बात और कह कर मैं इस चर्चा को समाप्त करता हूं।

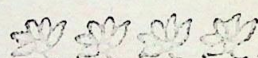
इन वर्षों में डुग्गर के लोक-साहित्य की मूल्यवान परम्परा को इकट्ठा करने, सम्भालने के लिए बहुत कम प्रयत्न हुआ है। यह सम्पत्ति इस नये युग की उथल-पुथल में जिस तरह खतरे में पड़ गई है, वैसी स्थिति इससे पहले कभी न हुई थी।

इस सम्पत्ति का जो अल्पांश इस समय तक सुरक्षित हो सका है वह इसकी मौलिक सप्राणता तथा कलात्तक मनोज्ञता का अच्छी तरह परिचायक है। यह सम्पत्ति हमारा बड़ा गौरवपूर्ण दाय है। इस दिशा में अभी तक कोई योजनाबद्ध प्रयत्न नहीं हुआ। डोगरी की साहित्यिक साधना पर यह एक बड़ा उत्तर-दायित्व है। इसके लिए मुफस्सलात में सहयोगी साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना बड़ी आवश्यक है। यही केन्द्र अपने २ क्षेत्र में इस उद्देश्य को सामने रख कर पुरुषार्थ कर सकेंगे। आवश्यकता होगी इन केन्द्रों के प्रयत्नों में उचित तालमेल बनाये रखने की। यह महत्वपूर्ण काम जम्मू के प्रधान-केन्द्र से किया जाना चाहिये।

आज जम्मू में शोध छात्रों की अनुसन्धान सम्बधी ज़रूरतों को देखते हुए भी लोकवार्ता सम्बन्धी इस सामग्री की बड़ी आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

काश्मीर शैव दर्शन

सृष्टि



प्रो० बलजिन्नाथ पण्डित

हमारे सांख्य शास्त्र में वर्तमान काल के विज्ञान की तरह जगत की सृष्टि मूल प्रकृति के परिणाम से मानी गई है। अन्तर केवल इतना है कि विज्ञान के आचार्यों ने उस का नाम विद्युत्शक्ति कहा है, प्रकृति नहीं। इसी स्वतन्त्र परिणाम के सिद्धान्त के कारण सांख्य शास्त्र को हम लोग अर्धनास्तिक दर्शन कहते हैं। हमारा पूरा और उत्कृष्ट आस्तिक दर्शन अद्वैत शैव दर्शन है। उस दर्शन का यह सिद्धान्त है कि जो कुछ है वह मूलत: परशिव के भीतर परशिव बन कर ही सदैव विद्यमान रहता है। वहां समस्त विश्व है, परन्तु शुद्धचेतना के ही रूप में है, विश्वरूपता का तो वहां नाम भी नहीं। जैसे बीज में वृक्ष बीज बन कर ही रहता है, वृक्ष के रूप में नहीं। बीज की अवस्था में तो वृक्षता का नाम भी नहीं। बीज से वृक्ष गर्मी जलांश और मृत्तिकांश के प्रभाव से उत्पन्न हो जाता है, परन्तु परशिव से विश्व परशिव की इच्छा से, उस की चेतना के स्पन्दन से, उसकी अनिरुद्ध स्वतन्त्रता के अनोखे विलास से, उस की परमेश्वरता के प्रभाव से उत्पन्न होता है, किसी बाह्य कारण से नहीं। वेदान्त की अविद्या या माया से भी नहीं और बौद्धवाद की वासना से भी नहीं। बीज से जब वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, तो बीज समाप्त हो जाता है, उस का छिलका खोखला हो जाता है। अत: कहा जाता है कि बीज का वृक्ष के रूप में परिणाम हो गया। परन्तु परशिव से जब विश्व उत्पन्न होता है, तो परशिव फिर भी परशिव ही बना रहता है। उस के स्वरूप और स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आता। यही तो उस की स्वतन्त्रता की महिमा है। उस का परिणाम नहीं होता। विश्व के उत्पन्न हो जाने पर परशिव खाली या खोखला नहीं हो जाता।

उस में विश्व उस अवस्था में भी शुद्ध चेतना के रूप में विद्यमान ही रहता है। जो विश्व उस में चेतनामय बना रहता है वही उस की इच्छा के उल्लास से विश्व के रूप में भी प्रकट हो जाता है। यह परशिव की विचित्र परिपूर्णता है। इसी भाव से उपनिषद में भी कहा गया है :

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

विश्व कैसे उत्पन्न होता है—जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, वैसे नहीं। जैसे माता से बच्चा जन्म लेता है, वैसे भी नहीं। जैसे दूध से दही बनता है, वैसे भी नहीं। उस के उत्पन्न होने का ढंग ही निराला है। शुद्ध स्फटिक स्वच्छ अति स्वच्छ होता है। उस में कोई भी स्थूल रंग नहीं होता। हां, अन्य वस्तुओं के सान्निध्य से उस में उन वस्तुओं के विचित्र नील, पीत, रक्त आदि रंग दीख पड़ते हैं। उन के दीखने पर भी स्फटिक की स्वाभाविक स्वच्छता में कोई विकार नहीं आता। इसी तरह से परशिव की शुद्ध चेतना के भीतर विश्व एक प्रतिबिम्ब की भांति झलकता है। उस के वहां झलकने पर भी परशिव की शुद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। फरक इतना अवश्य है कि स्फटिक में रंगों और आकारों की विचित्रता बाह्य कारणों के प्रभाव से झलकती है, अतः वह परतन्त्र है, जड़ है और अनीश्वर है। परन्तु परशिव में विश्वरूपता उसकी अपनी ही चेतना के स्पन्दन से उस की परशिवता के विलास से, उसके परम स्वातन्त्र्य से बिना किसी बाह्य कारण के प्रभाव से प्रति-बिम्बित होती है ; इस प्रतिबिम्ब क्रिया का आधार भी परशिव ही है, बिम्ब भी वही है और प्रतिबिम्ब भी वस्तुतः वही है। इसी लिए स्वतन्त्र, चेतन, परमेश्वर आदि शब्दों द्वारा उस का उल्लेख किया जाता है।

मूल सृष्टि के आरम्भ में परशिव दो रूपों में प्रकट होता है। वह वस्तुतः शुद्ध और चेतन प्रकाश है। प्रकाश होने के कारण सदैव अपने स्वभाव से ही चमकता अर्थात् भासता रहता है। उस का भासना कभी विच्छिन्न नहीं होता। चेतना के स्वभाव से उसे सदैव अपनी और अपने भासने की प्रतीति भी होती ही रहती है। स्फटिक को अपने भासने की प्रतीति नहीं होती है। स्फटिक किसी चेतन व्यक्ति के अनुग्रह के बिना भासता भी नहीं। अतः वह जड़ है, अप्रकाश है और प्रतीतिविहीन है। परशिव इस के विपरीत प्रकाशात्म है और प्रतीतिरूप भी है। इस प्रतीति को विमर्श कहते हैं। चेतना के दो पहलू यह प्रकाश और यह

विमर्श होते हैं। दोनों ही परस्पर अभिन्न हैं। प्रकाश विमर्शात्मक है और विमर्श प्रकाशात्मक है। परन्तु परशिव की चेतना के स्पन्दन से उस के स्वतन्त्र्य के बिलास से, कभी प्रकाशांश प्रधानतया भासने लग जाता है और विमर्शांश उस की कान्ति में छिप सा जाता है और कभी विमर्शांश ही प्रधानतया चमक उठता है और प्रकाशांश उस की चमक में खोया हुआ सा रह जाता है। इस तरह से इन दो पहलुओं के गुणप्रधान भाव से पहले दो तत्त्वों की सृष्टि हो जाती है। प्रकाश-प्रधान तत्त्व को शिवतत्त्व और विमर्श प्रधान तत्त्व को शक्तितत्त्व कहते हैं। शिवतत्त्व परशिव की विश्वोत्तीर्णता का प्रतीक है और शक्तितत्त्व उसकी विश्व-मयता का मूल है। इन दो तत्त्वों तक केवल आत्म आभास ही होता है। अर्थात् केवल अपना आप या 'अहं" ही का प्रकाश और विमर्श होता है। "इदं" अर्थात् विषयता का अभी कोई नाम भी नहीं।

परमेश्वरता के विलास से अहं अंश के भीतर ही सामान्य इदं अंश एक धीमे प्रतिबिम्ब की तरह झलकने लग जाता है, परन्तु अहं की कान्ति के भीतर अभी खोया हुआ सा पड़ा रहता है। इस प्रकार के 'अहमिदम्" के आभास को सदाशिव तत्त्व कहते हैं। ज्यों ही परमेश्वरता के विलास से, अर्थात् चेतना के स्पन्दन से, वह धीमा इदं अंश स्फुट हो जाता है और अपनी आभा से अहं अंश को छिपा सा देता है, त्यों ही चौथे तत्त्व की सृष्टि हो जाती है। इस इदं अंश की प्रधानता वाले तत्त्व का नाम ईश्वर तत्त्व है। अहं और इदं की समान-रूपता की प्रकाशमानता को शुद्धविद्या या सद् विद्या कहते हैं। इन तीनों तत्त्वों में दो दो अंशों का अवभास होता है। एक अहं अंश अर्थात् प्रमातृ अंश और दूसरा इदं अंश अर्थात् प्रमेय अंश। अत: यहां भेद का आभास होता है। परन्तु "अहमिदम्"—मैं यह हूं या "इदमहम्" यह मैं हूं, इस प्रकार की अभेदभाव की प्रतीति भी साथ रहती ही है। अत: ये तीन तत्त्व भेदाभेद दशा के तत्त्व होते है। पहले दो तत्त्व अभेद दशा के तत्त्व होते हैं, क्योंकि वहां केवल अहं अर्थात् प्रमाता का ही आभास होता है प्रमेय का नहीं।

पहले दो तत्त्वों में ठहरे हुए शाम्भव और शाक्त नाम के प्राणी होते हैं। उन्हें अकल प्राणी कहते है। उनके ऊपर क्रम से शिव और शक्ति का शासन रहता है। सदाशिव तत्त्व पर शासन करने वाले भगवान् सदाशिव होते हैं और वहां के शास्य प्राणी मन्त्रमहेश्वर कहलाते हैं। ईश्वर तत्त्व के शास्य प्राणी मन्त्रेश्वर होते हैं और उन के शासक भगवान् ईश्वर। भगवान् ईश्वर अवतार रूप में ठहर कर निचले अर्थात् शुद्धविद्या नामक तत्त्व में भी प्रकट हो जाते हैं।

वहां उनको अनन्तनाथ या अघोरेश कहते हैं। विद्यातत्त्व में ठहरे हुए प्राणी मन्त्र या विद्येश्वर कहलाते हैं और उन के शासक भगवान् अनन्तनाथ ही होते हैं। यहां तक की सृष्टि स्वयं परशिव ही करते हैं। अगली सृष्टि भी वे ही करते हैं, परन्तु स्वयं नहीं करते; उसे भगवान् अनन्तनाथ आदि द्वारा करवाते हैं। तो भगवान् अनन्तनाथ विद्या तत्त्व में ठहर कर माया तत्त्व की सृष्टि करते हैं और उस माया तत्त्व में क्षोभ अर्थात् हलचल उत्पन्न करके उसे ही पांच प्रकार के संकोचक तत्त्वों में प्रकट करते हैं। माया तत्त्व स्वयं एक संकोचक तत्त्व है। इस में आकर प्रमाता अभेद भाव का सर्वथा भूल जाते हैं। प्रमेय को अपने से भिन्न समझने लग जाते हैं। पांच संकोचक तत्त्व हैं कला, काल, राग, अशुद्ध विद्या और नियति, ईश्वर सर्वज्ञ और सर्व कर्त्ता है। परन्तु माया कला के रूप में प्रकट हो कर उसे अल्पकर्त्ता बना देती है उस की क्रिया शक्ति में संकोच लाती है। ईश्वर यहां जीव रूप में प्रकट होकर कुछ ही कर सकता है, सब कुछ नहीं; कुछ ही जान सकता है सब कुछ नहीं। ज्ञान शक्ति के इस संकोच को अशुद्ध विद्या तत्त्व कहते हैं। काल तत्त्व की सृष्टि के साथ साथ जीव अपने ऊपर मैं था, मैं हूं, मैं होऊंगा इस प्रकार के कालिक संकोच को लाद देता है और अपने में प्रतिबिम्बित विषयों पर भी कालिक संकोच का आरोप करता है कि अमुक वस्तु थी, अमुक है और अमुक होगी। आत्मा वस्तुतः अभिन्न है और क्रम रहित है। परन्तु काल तत्त्व से संकुचित होने पर अपने को क्रमरूपता का पात्र बना देती है। वह क्रमरूपता ही कालकलना कहलाती है। जीव के व्यवहारों का कोई नियत क्रम नहीं। परन्तु सूर्योदय, सूर्यास्त, राशिसंक्रम्, ऋतु परिवर्तन इत्यादि प्राकृतिक व्यवहारों का क्रम नियत क्रम है। इस नियत क्रम के परिमाण से जीव अपने अनियत क्रम वाले व्यवहारों को मापने लग जाता है और यही कालकलना कहलाती है। जीव किसी ही वस्तु के जानने और करने में दिलचस्पी रखता है, सभी में नहीं। यह उस का चौथे प्रकार का संकोच रागतत्त्व कहलाता है। यह कला और विद्या को और भी संकुचित कर देता है। पांचवें प्रकार का संकोच होता है नियति। जीव जो कुछ कर सकता है, नियति के नियमों में बन्धा रह कर ही कर सकता है। यह नियति कला, विद्या और राग तीनों को और भी संकुचित कर देती है। इस प्रकार के इन पांच और माया के द्वारा संकोच को प्राप्त हुआ प्रमाता जीव कहलाता है। जीव को ही पुरुष तत्त्व या पुम्स्तत्त्व कहते हैं और पुरुष तत्त्व के सामान्य प्रमेय अर्थात् विषय तत्त्व को प्रकृति तत्त्व कहते हैं। इस प्रकृति के तीन गुण होते हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण।

सत्त्व गुण हल्केपन को, सुखमयता को और प्रकाशमयता को कहते हैं। रजोगुण प्रवृत्तिशीलता का, दु:खमयता का, क्लेशरूपता का नाम है। तमोगुण भारीपन को, अन्धकार को, अर्थात् अज्ञान को, मोहमयता को, आलस्य को, ढीलेपन को कहा जाता है। ये गुण वस्तुत: पुरुष के होते हैं और जब वह अपने प्रमेय अर्थात् प्रकृति को इन गुणों के ही दृष्टिकोण से देखने लगता है तो प्रकृति भी त्रिगुणा बन कर ही प्रकट हो जाती है। पहले पांच तत्त्वों की सृष्टि स्वयं परशिव ही करता है, परन्तु छ: संकोच तत्वों और इन दो तत्वों की सृष्टि भगवान् अनन्तनाथ करते हैं।

भगवान् ईश्वर गुण तत्त्व में भी अवतार के रूप में प्रकट हो जाते हैं। वहां उन का नाम भगवान् श्री कण्ठनाथ है। आगे की सृष्टि इनके ही अधिकार में रहती है। वे ही प्रकृति तत्त्व में परिणाम लाकर तीन अन्त:करण तत्त्वों अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकार की सृष्टि करते हैं। वे ही अहंकार में पुन: परिणाम लाकर पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न करते हैं और अहंकार में से ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक पांच सूक्ष्म विषयों और पांच महाभूतों अर्थात् आकाश, वायुपरमाणु, अग्निपरमाणु, जलपरमाणु और पृथ्वीपरमाणु, इन पांच तत्त्वों की भी सृष्टि करते हैं। आगे उन परमाणुओं से भुवनों, वस्तुओं और शरीरों की सृष्टि का काम ब्रह्मा जी और कश्यप आदि प्रजापति करते हैं। रुद्रों की सृष्टि संकोच तत्वों की सृष्टि से ले कर भूततत्त्वों की सृष्टि तक लगातार चलती ही रहती है। इसी लिए शतरुद्रिय आदि शास्त्रों में असंख्य रुद्रों की सत्ता का वर्णन आया है। ब्रह्मा जी और भगवान् विष्णु की सृष्टि प्रकृति और पुरुष की सृष्टि के साथ साथ होती है। भगवान् ईश्वर एक और अवतार के रूप में सूक्ष्म भूतों की सृष्टि में प्रकट हुए हैं। इन को उस अवतार के रूप में भगवान् स्वच्छन्दनाथ कहते हैं। इन्हीं स्वच्छन्दनाथ ने शैव आगमों का उपदेश किया है। शिवपुराण में जिसे भगवान् शिव का चरित गाया गया है वह स्वच्छन्दनाथ ही है। इस स्वच्छन्दनाथ का दूसरा नाम श्री उमापतिनाथ भी है। इन का ही विवाह भगवती उमा अर्थात् पार्वती से हुआ है। सभी देवता आदि सूक्ष्म भूतों की सृष्टि में रहते हैं। हम लोग स्थूल सृष्टि के प्राणी हैं।

इस प्रकार के सृष्टिक्रम का वर्णन शैव आगमों में आता है। उन आगमों के निचोड़ को श्री अभिनवगुप्ताचार्य जैसे महा गुरुओं ने तन्त्रसार तन्त्रालोक आदि शास्त्रों में सरल भाषा में बड़े ही सुन्दर ढंग से दे दिया है। उसी के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

इस सृष्टि के भीतर शैवदर्शन की दृष्टि से असंख्य ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अनेकों भुवन अर्थात् लोक हैं। प्रत्येक लोक में अनेक प्रकार के प्रमाता अर्थात् जीव, प्रमाण अर्थात् ज्ञान के साधन और प्रमेय अर्थात् ज्ञान के विषय हैं। एक एक ब्रह्माण्ड के संचालक पांच पांच कारण हैं। उन में ब्रह्मा परमाणुओं से लोकों, शरीरों और विषयों की सृष्टि करते रहते हैं। विष्णु सृष्ट पदार्थों को टिकाए रखते हैं। रुद्र कुछ काल तक टिकी हुई सृष्टि का संहार करते हैं। कार्य वस्तु का कारण वस्तु में लय करना संहार कहलाता है। तो रुद्र सारी ठोस सृष्टि को पिघला कर द्रवरूप में अथात् जल तत्त्व में लीन करते हैं। आगे पिगली हुई सृष्टि अग्निज्वालाओं में विलीन हो जाती है। वह ज्वालाएं वाष्प रूप में परिणत हो जाती हैं। वाष्प सृष्टि आकाश में विलीन हो जाती है और आकाश अहंकार में। इस प्रकार से सभी उत्तर-उत्तर तत्त्व पूर्व-पूर्व तत्त्व में विलीन होते रहते हैं। यह संहार का काम प्रलय के समय रुद्रों के द्वारा किया जाता है। इस तरह से भगवान रुद्र अनेक रूपों में प्रकट होकर उन तत्वों का संहार करते रहते हैं। इस सृष्टि के भीतर परशिव जीव के रूप में प्रकट होते ही अपने परशिव स्वरूप को भूल जाता है। यह स्वरूप का भूल जाना पिधान कहलाता है। तो पिधान का कार्य चलाने वाले कारण भगवान ईश्वर माने गए हैं। जीव अन्नत जन्मों में अन्नत प्रकार की क्रीड़ाओं का अभिनय करके अन्त में सद्गुरू के अनुग्रह से उत्तम योग की दीक्षा पाकर, उसके अभ्यास से अपने भूले हुए परशिवतात्मक स्वभाव को पुनः पहचान लेता है। उसे पहचान कर वह पुर्नजन्म के बन्धन से मुक्त होकर पहचान ली हुई अपनी परमेश्वरता के आनन्द में सदा के लिए विभोर हो जाता है। इस स्वरूप की पहचान कराने के कार्य को अनुग्रह कहते हैं। अनुग्रहकृत्य का संचालन करने वाले भगवान् सदाशिव माने गए हैं। दाक्षिणात्य शैवों ने भी इन पांच कृत्यों के सिद्धांत का उपदेश किया है। आद्य शंकराचार्य ने अपनी सौन्दर्य लहरी में कहा है—

जगत् सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षमयते
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि व पुरीशस्तिरयति।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूकतिलयोः । (सौं० ल० २४)

दक्षिण के ही एक और सिद्ध श्री धर्माचार्य ने भी अपनी पञ्चस्तवी में ऐसे ही कहा है—

विरिञ्च्याख्या मातः सृजसि हरि संज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि पिदधासीश्वर—दशा
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलिनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते ।। (पं० स्त० ५—२३)

यह जो स्थूल जगत हमें दीखता है यह पारमेश्वरी सृष्टि का एक बहुत छोटा सा अंश है । इससे अनेकों गुणा बड़ी सूक्ष्म सृष्टि होती है । स्थूल सृष्टि में सारा व्यवहार स्थूल शरीरों द्वारा ही किया जा सकता है, परन्तु सूक्ष्म सृष्टि में स्थूल शरीरों की कोई आवश्यकता नहीं होती । उस सृष्टि के जीवों के पास सूक्ष्म शरीर होते हैं । वे शरीर पंच महाभूतों के सूक्ष्म रूपों से बने होते हैं । उन शरीरों में सभी इन्द्रिय शक्तियां सभी अन्तःकरण शक्तियां और प्राणशक्तियां काम करती हैं । वे जीव ठीक उसी प्रकार से काम करते हैं जिस प्रकार इस स्थूल सृष्टि के प्राणी स्वप्न व्यवहार में काम करते हैं । स्वप्न में काम क्रोध आदि, आहार निद्रा आदि, रागद्वेष आदि और इस प्रकार के अन्य सभी व्यवहार चलते हैं और जाग्रत् अवस्था की अपेक्षा सुकरता से चलते हैं । अन्तर इतना अवश्य है कि हम जाग्रत् सृष्टि के स्थूल प्राणी हैं । हम वस्तुतः स्वप्न सृष्टि के प्राणी नहीं । हमारा स्वप्न व्यवहार किसी विशेष कारण से होता रहता है । अतः वह हमारा स्वाभाविक व्यवहार नहीं । इसी लिए वह अस्थिर होता है, प्रत्येक प्राणी का पृथक् पृथक् अपना ही होता है । और उस से चिरस्थायी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । परन्तु जो प्राणी स्वभावतः स्वप्न-सृष्टि के प्राणी हैं, उनकी वह स्वप्न सृष्टि इस हमारी जाग्रत् सृष्टि की अपेक्षा अधिक समय तक ठहरने वाली होती है । वह सृष्टि अनेकों बार उत्पन्न भी होती है और विलीन भी होती है । परन्तु वह सतत गति से स्थिर रहती है । हमारे अनेकों कल्पों के अनन्तर ही उस सूक्ष्म सृष्टि का संहार होता है । अतः हमारी अपेक्षा वह सृष्टि अमर है । सभी प्रकार के देवता और ब्रह्मा, विष्णु आदि तक इसी सूक्ष्म सृष्टि के प्राणी होते हैं । भगवान उमापतिनाथ (पुराणों के शिव) और उनकी पत्नी भगवती पार्वती भी इसी सृष्टि के अधिकारी हैं । इस संसार में जितने भी देवों, देवियों, भैरवों, शक्तियों आदि की उपासना की जाती है वे सारे ही प्रायः इसी स्वप्न सृष्टि के अधिकारी हुआ करते हैं । छोटे से छोटे क्षुद्र जन्तु से ले कर बड़े से बड़े देवता तक के साधारण प्राणी चाहे स्थूल सृष्टि के हों, चाहे सूक्ष्म सृष्टि के, एक ही वर्ग में गिने गए हैं । उस वर्ग को "सकलों" का वर्ग कहते हैं । ये सभी प्राणी

अपनी परमशिवता को भूल कर किसी परिमित वस्तु को अपना आप समझते हैं। अत: परिमितता के अभिमान के भागी होते हैं। इन सभी में भेद दृष्टि रहता है। अपने को एक दूसरे से, परमेश्वर से और वेद्य विषयों से भिन्न समझते हैं। यह भेद दृष्टि का दोष ही इन का मायीय मल कहलाता है। प्राय: सभी कर्म संस्कार की और क्षुद्र कर्त्तव्य के अभिमान की वासना के कारण कर्म-बन्धन में फंसे रहते हैं। इस तरह से तीनों मलों से घेरे हुए स्थूल जीव तथा सूक्ष्म जीव सांसारिक प्राणी हैं, बद्ध प्राणी हैं और जन्ममरण के भागी जीव हैं।

इस सूक्ष्म सृष्टि से उत्कृष्ट एक सूक्ष्मतर सृष्टि होती है। उस सृष्टि के प्राणी सभी सुख, दु:ख, क्षुधा, पिपासा, राग, द्वेष, भोग, मोक्ष, आदि भावों से मुक्त हो कर आकाशवत् परम शान्तभाव में ठहरे रहते हैं। एक अनुपम और अविच्छिन्न शान्ति का वे अनुभव करते रहते हैं। यह सृष्टि सुषुप्तिदशा की सृष्टि होती है। इस सृष्टि के प्राणी "प्रलयाकल" प्राणी कहलाते हैं। वे तब तक इस परम शान्ति की ही दशा में टिके रहते हैं, जब तक सारे अन्त:करण तत्त्व मूल प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। उस अवान्तर प्रलय के अनन्तर जब भगवान श्री कण्ठनाथ प्रकृति में पुन: क्षोभ उत्पन्न कर के सूक्ष्म तत्त्वों की पुन: सृष्टि करते हैं, तो ये सभी सुषुप्त प्राणी मानो गाढ निद्रा से जाग उठते हैं और उस सुषुप्ति की अवस्था की प्राप्ति से पूर्व जो वासनाएं उन के अन्त:करण में प्रभाव जमाये हुए थीं, वे भी पुन: जागकर इन को पुन: जन्ममरण की संसृति की ओर खींच ले जाती हैं। इस तरह से युगों तक एक प्रकार की मुक्ति का अनुभव कर के भी ये प्राणी पुन: संसार में फंस जाते हैं। शैव दर्शन सिद्धान्तों के अनुसार, न्याय-वैशेषिक का अपवर्ग, सांख्ययोग का कैवल्य और बौद्धवाद का निर्वाण इसी प्रलयाकलों की मुक्ति की भिन्न भिन्न अवस्थाएं हैं।

वेदान्त के ब्रह्म निर्वाण नामक मोक्ष के भागी प्राणी जिस दशा को प्राप्त करते हैं, उस में तुर्यदशा का थोड़ा सा प्रकाश होने लग जाता है, परन्तु स्वरूप संकोच का अंश उन में रह जाता है। अत: उन्हें अपनी परमेश्वरता की साक्षात् अनुभूति नहीं होती। उस अनुभूति से वञ्चित रह कर वे ईश्वरता को माया की उपाधि से ही प्रतीत होने वाली मिथ्या वस्तु समझते रहते हैं। उन्हें "विज्ञाना-कल" प्राणी कहा जाता है। विज्ञानाकलों की सृष्टि से भी उत्कृष्ट सृष्टि के प्राणी "विद्येश्वर" या "मन्त्र" कहलाते हैं। उनका उल्लेख ऊपर विद्या तत्त्व की सृष्टि के साथ किया गया। ये तुर्य सृष्टि की माध्यम दशा के प्राणी हैं। इन

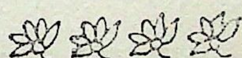
में भेद दृष्टि का दोष रह जाता है। अतः ये उत्कृष्ट तुर्य सृष्टि से नीचे ही रह जाते हैं। इन के ही अधिष्ठाता भगवान् अनन्तनाथ हैं। इन से ऊपर ईश्वर तत्व के "मन्त्रेश्वरों" और सदाशिव तत्व के "मन्त्र महेश्वरों" का स्थान है। ये मायीयमल से भी मुक्त होते हैं, परन्तु भेदा भेद दृष्टि का सूक्ष्मतर मल या मल के अंकुर भाव की अवस्था इन में अवश्य रहती है, अतः ये परिपूर्ण अभेद से एक सीढ़ी नीचे ही ठहरते हैं। परिपूर्ण और असीम अभेदमयी परमेश्वरता का साक्षत् अनुभव करने वाले प्राणी केवल "अकल" प्राणी ही होते हैं।

स्थूल सृष्टि में भौतिक शरीर होते हैं। सूक्ष्म सृष्टि में मनोमय शरीर और भावनामय कार्य होते हैं। सूक्ष्मतर अर्थात् सुपुप्तभाव की सृष्टि में केवल स्वरूप संकोच से युक्त चेतना ही काम करती है। विज्ञानाकल सृष्टि में संकोच और शिथिल हो जाता है, परन्तु स्वभावभूत ईश्वरता की अनुभूति के अभाव के कारण संकोच पूरी तरह से हटता नहीं। विद्येश्वरों की सृष्टि में अपनी संविदात्मकता के प्रकाश के होते हुए भी भेददृष्टि का मल रहता है। परन्तु यहां से ले कर अकलों तक की सृष्टि शुद्ध सृष्टि ही कहलाती है। इस शुद्ध सृष्टि के प्राणी प्राय: ऊपर ऊपर ही जाते रहते हैं, नीचे प्राय: नहीं आते। प्रलयाकल और सकल प्राय: संसार में ही आते रहते हैं। विज्ञानाकल इन की अपेक्षा शुद्ध हैं और ऊपर की सृष्टियों की अपेक्षा अशुद्ध ही होते हैं। उन में से कई नीचे भी आते हैं और कोई ऊपर भी जाते हैं। इस प्रकार से इस पारमेश्वरी सृष्टि में अनन्त प्रकार का वैचित्र्य होता है। उस वैचित्र्य का थोड़ा सा दिग्दर्शन हमें शैव आगमों में मिलता है और उसकी साक्षात् अनुभूति शैवयोग के अभ्यास से प्राप्त होती है। विशेष करके शैवदर्शन के शाम्भव-उपाय के अभ्यास से ये रहस्य खुल जाते हैं।



डोगरी कविता

वेदपाल 'दीप'



बीस पचीस बरसों की सीमित अवधि में डोगरी साहित्य का असाधारण वेग से सृजन और विकास भाषा इतिहास में एक अद्भुत घटना है। किन्तु डुग्गर की सांस्कृतिक चेतना को आन्दोलित करने वाली विशेष परिस्थितियों में यह अनहोनी-सी घटना तर्कसंगत और स्वाभाविक प्रतीत होती है। यह लहर उस समय उठी जब भारत में विदेशी सत्ता के ह्रास का युग था और स्वतन्त्रता-संग्राम अंतिम चरण में प्रवेश कर चुका था। जम्मू व कश्मीर राज्य में एक राजनैतिक प्रबन्ध टूट रहा था, दूसरा उभर रहा था। सामन्तवादी आस्थाओं का स्वप्न भंग हो रहा था, और जीवन की यथार्थताओं के दर्पण में जाति का चेहरा साफ दीखने लगा था। संक्रान्ति की इस वेला में, न्यायोचित अधिकारों से वंचित डुग्गर की जनता और उत्पीड़ित बुद्धिजीवी वर्ग के दबे हुए अरमानों को वाणी न मिलती तो अपनी वेदना, अपने उद्‌गारों की अभिव्यक्ति का उनके पास और क्या माध्यम रह गया था ?

पहाड़, नदी-नाले, चश्मे, चील-देवदार', 'अक्क', 'बरैंकड़', 'किक्कर' और 'थोर' के इस प्रदेश के लोक-गीतों में निर्धन और दुखियारे लोगों की दिनचर्या चीखती रही, सामाजिक रूढ़ियों, अन्याय, शोषण, दासता के विरुद्ध आवाज़ उठाती रही। परन्तु प्रकाशित अथवा अप्रकाशित साहित्य अपर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के कारण इस गौरवमय सांस्कृतिक परम्परा की शृंखला की कड़ी बीच में टूटी हुई नज़र आती है।

बसोहली चित्रकला में संवेदना का रंग भरने वाले, आंसुओं के निर्झरों से पहाड़ी लोक-गीतों का प्रसार करने वाले, इस पर्वत प्रदेश के कण कण के लिए जान हथेली पर रख कर निकलने वाले डोगरों की अपनी मातृ-बोली और साहित्य से इस प्रकार उदासीनता पर विश्वास नहीं होता। कहीं कुछ खो गया है। बस अब लोकगीत ही हमारी साहित्यिक परम्परा की पृष्ठभूमि नज़र आते हैं। इस क्षेत्र में हमें प्रेरणा देने वाला कोई अधिनायक, पथ-प्रदर्शक नहीं मिलता, कोई गालिब मीर, तुलसी कबीर, लल्लेश्वरी, शेख नूरुदीन, अरनी माल, हव्वा खातून नहीं। कोई भी पद चिन्ह नहीं। केवल एक अन्धेरा, एक मरुस्थल जिस में हमें अपना मार्ग स्वयं बनाना था। मुझे यहां उस छोटे से काफिले का उल्लेख करना है जिसने ऐसी दशा में यात्रा आरम्भ करने का निश्चय किया और एक वृहत् कारवां का रूप धारण कर लिया।

समय के तीव्र परिवर्तन और शताब्दियों से दयी हुई कोमल भावनाओं के प्रकटीकरण के लिये ओजपूर्ण वाणी वांछित थी। डुग्गर का यह मनोरथ काफिले की अगवाई करने वाले कवियों ने पूरा किया। इन साहित्यिकारों ने एक ऐतिहासिक कर्तव्य पूरा किया जिसका सही मूल्यांकन अगली पीढ़ियां कर सकेंगी।

जब हम पीछे की ओर नजर दौड़ाते हैं तो एक रहस्यपूर्ण तमसाकार में कुछ दीप भी टिमटिमाते दिखाई देते हैं। खोज और श्रम के फलस्वरूप कुछ पुराने कवियों से जानकारी हुई है लेकिन बड़ी कठिनाई से उनकी एक-एक दो-दो रचनाओं का ही पत्ता चल सका है। लेकिन जो कुछ प्राप्त हुआ है वह इतना मार्मिक, जीवन के इतना निकट है कि मन आनन्द-विभोर हो उठता है। मानो कोई अमूल्य निधि मिल गई हो।

इसी खोज में कवि दत्तु की, जिनका जन्म आज से लगभग ढाई सौ वर्ष पहले तहसील बसोहली के नगर भड्डू में हुआ था, एक कविता मिली है—

किल्लियां बत्तना छोड़ी दित्ता,
इब्बै साथै साथै भरी ल्यौन्नियां पानी।
बुरा वो लोक इस गंगथा दा,
अनदोसियें गी दोस दिन्दा ऐ जानी……

दत्तु की यह छोटी-सी कविता उस समाज पर एक तीव्र कटाक्ष है जहां प्रेम एक अपराध ठहरा हो।

पं० गंगाराम तहसील साम्बा के गढ़वाल गाव में १७१७ ई० में पैदा हुए।

कण्ढी प्रदेश के निवासियों के कठोर जीवन और प्रतिदिन की समस्याओं के सम्बन्ध में उनकी कुछ पंक्तियां प्राप्त हुई हैं :

बाजरे दी राखी करी, डंगर चराई करी,

चिड़ियां डोआरी करी, कियां कियां कत्ताना......

कण्डी के गरीब लोगों की भिन्न २ समस्याओं की इतने थोड़े शब्दों में अधिक व्याख्या—बाजरे के खेत की रक्षा, पशुओं के चारे इत्यादि का प्रबन्ध, जल के अभाव का सामना, ऊंचे-नीचे पथरीले रास्तों पर चलने का कष्ट, सारा दिन इन्हीं धन्धों में बिता कर रात के आखरी पहर में उठ कर चक्की में अनाज पीसना—जनसाधारण की समस्याओं को इतने निकट से निरीक्षण करने वाला कवि डुग्गर की परम्परा का द्योतक है।

लाला रामधन अखनूर के रहने वाले थे। आज से ६५ वर्ष पूर्व उन का देहान्त हुआ। उनकी एक डोगरी कविता भी प्राप्त हुई है :—

हस्सना खेडना मनै दी मौज ओ, चितै गी रखना नन्दै कन्नें।

बिन्द भर कुसै ने मन्दा नि बोलना, चन्नैं दी चानना चन्नैं कन्नें......

इस कविता में ग्रामीण जीवन के अनेक चित्र हैं। सब में एक समान रेखा खिचती चली गई है, कुरीतियों, अन्धविश्वासों से स्वाभाविक विद्रोह की, मानव प्रेम में आस्था की।

बीच में बहुत कुछ खो जाने पर भी डोगरी कविता की परम्परा की एक कड़ी तो मिल ही जाती है और वह है पुराने और नये कवियों की रचनाओं में जीवन की यथार्थ व्याख्या।

वास्तव में इस कड़ी को मिलाने वाले हैं हरदत्त शास्त्री, जिनका १३ अप्रैल १९५६ में देहान्त हुआ। हमारे इस इलाके में सामन्तवादी राज्यव्यवस्था के प्रभाव के कारण लोगों के सामाजिक जीवन पर धार्मिक विचारों का गलबा बहुत ज्यादा रहा है। आश्चर्य नहीं कि इस मन्दिरों वाले शहर में लोग जागीरदारी व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं का समाधान कथा-कीर्तनों तथा धार्मिक उत्सवों में ढूंढते रहे। हरदत्त जनता में कथावाचक के रूप में प्रसिद्ध थे। कथावाचक के रूप में उनकी लोकप्रियता, उनके कथा-कीर्तनो में विशेष आकर्षण का मूल कारण थी—उनकी डोगरी कविता और उसके द्वारा तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का विवेचन। लगता यूं है कि उनकी यह धर्मपरायणता एक माध्यम थी लोगों

को उनकी दुर्दशा से सचेत करने की। शायद वह ही प्रथम डोगरी कवि थे जिन की कविताएं प्रकाशित हो कर जनता तक पहुंचीं। उनकी कई पंक्तियां तो लोकोक्तियों की भांति डोगरा घरों में प्रचलित हुईं :

"लक्खैं थमां बनी गेया कक्ख लोको,
देस परसैसरैं पार लाना।"
"खज़ल खोआरियां जी, जम्मे लाल ते बन्डे कोले।"
"स्हाड़े बड्डे बडेरें दियां धन्न खट्टियां।" इत्यादि

ऐसी कविताओं में अतीत की महिमा है, जाति का गौरव जगाने की चेष्टा है परन्तु कहीं भी राजों-रजवाड़ों का गुणगान, वास्तविकता से विमुखता, और जीवन से पलायन नहीं। उन्होंने १९४७ के परिवर्तन से उभरने वाले सत्यों का साक्षात्कार किया। असल बीमारी का सम्बन्ध समाज के आर्थिक प्रश्नों से जोड़ने और सही चिकित्सा करने की ओर संकेत किया। "हुन नमां जमाना जी" कविता में उन्होंने स्पष्ट कहा कि आमदन कम होने से घरों में अशान्ति है, हमें रोग का सही इलाज करना चाहिये :

खर्च मता ते औन्दन थोड़ी, मसां गुजारा करदी जोड़ी,
सारी जपफी दी इयै मरोड़ी, जागत न्याणा जी,
बरमी कुट्टे दे सप्प नि मरदे, लोक रोगै दा लाज नि करदे,
मनो मन धुखदे बेंदन जरदे, रोग नि जाना जी.........॥

आगे देखिये सम्बोधन रावण से है किन्तु क्या यह किसी भी निरंकुश राज्य के लिये चेतावनी नहीं हो सकती ?

ओ लंका तेरी नईयों बचनी, ठंईं ! ओ जिद्द नइयों चंगी राजेया, ठंईं !
फल माड़ियें गललें दा माड़ा, ते आई पुज्जा अन्त काल थोआड़ा।
ते सिरै पर भार बजदा, ठंईं !

उन्होंने देश के विभाजन पर हुए साम्प्रदायिक दंगों के पीछे साम्राज की षड़यन्त्रकारी कूट-नीति को भांप लिया। "फुट्ट इस देसै वाली कालै दी नशानी ऐ" कविता में उनकी राजनैतिक सूझ-बूझ और चिन्तन की दिशा का पता चला :

राज देइऐ पिच्छुआं रंगेज हत्थ मलै दा सा,
बिस्तरा पलेटै दा सा, चीज बस्त स्हलै दा सा,

जाने गी त्यार सा, बिच्चों बिच जलै दा सा,
पता नई सा, जन्दे जन्दे इनें अग्ग लानी ऐं......।।

हरदत्त ने डुग्गर को पुकारा और गरीबी से छुटकारा प्राप्त करने के लिए उसे संगठित होने का सुझाव किया :

किआं गजारा होग, ओ डोगरेया देसा !
रंग बदले सबनें देसें, तूं रेआ उयै खुदरंग,
सुख आया होरनें दै हिस्सै, तेरै हिस्सै भुख-नंग।
बक्खै सुख नई रौहन्दा, कट्ठै जेई नइयों मौज बहार......।।

डोगरी कविता के प्रति लोगों में रुचि पैदा करने में दीनू भाई पन्त का हिस्सा बहुत अधिक है। १९४५ में जब हमारे आज के बहुत से डोगरी भाषा के कवि हिन्दी या उर्दू में लिखते थे, दीनू भाई हिन्दी के साथ साथ डोगरी कविता की साधना भी करते रहे। उस समय डोगरों की सामन्तवादी अकड़ फूं और खानदानी बड़प्पन की कृत्रिम भावनाओं को झंझोड़ने की आवश्यकता थी। डोगरा जाति जीवित रही उस हास्य-व्यंग्य-कटाक्ष की योग्यता के बल पर, जिसने उसे अपनी त्रुटियों, कमियों, तथा-मूर्खताओं पर ठहाके मार कर हंसने की क्षमता प्रदान की थी। दीनू भाई ने कविता क्षेत्र में पदार्पण हास्यरस के दरवाज़े से किया। उनकी लम्बी कविता "शहर पहलो पहल गे" में डोगरा जीवन के विभिन्न पहलुओं का इस ढंग से चित्रण है कि हंसी के फुहारे छूटते हैं परन्तु बाद में पता चलता है कि श्रोतागण स्वयं अपने ऊपर हंस रहे थे। साहित्यिक माप-दण्ड के अनुसार यह कृति उच्चकोटि की श्रेणी में न भी आती हो तो भी इसकी डोगरी कविता को बड़ी देन है। इसने डोगरी कविता की सर्वप्रियता को बढ़ाया और लोगों की प्रतिदिन की समस्याओं को, काव्य के साधन से, उभारने की प्रथा डाली। १९४७ के लगभग रियासत के अन्दर राजनैतिक उथल पुथल का प्रभाव ग्रहण करके कुछ अन्य नवयुवक कवि भी दीनू भाई के हमसफर बन गए। यह उन दिनों की बात है जब कि प्रिंस आफ वेल्ज़ कालेज जम्मू में रामनाथ शास्त्री के अध्यापन-निरीक्षण में तीन युवक विद्यार्थी, केहरसिंह सलाथिया जो बाद में 'मधुकर' हो गये, यशपाल जो 'यश शर्मा' बन गये, और वेदपाल धर्मट्ट जो बाद में 'दीप' कहलाने लगे, पढ़ाई की ओर ध्यान कम और कुछ 'इधर उधर' ध्यान ज्यादा देने लग पड़े थे। शास्त्री जी स्वयं काव्य-साधना में जुट गए थे। वह युग समाप्त हो रहा था जबकि डोगरे घर से बाहर डोगरी बोलने में लज्जा अनुभव

करते थे। १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद सभी प्रान्तों में अपनी संस्कृति और मातृभाषा के लिए जिस तड़प की अभिव्यक्ति हुई, भाषावार प्रान्तों की मांग ने जोर पकड़ा और चन्द ही सालों में भारत की विभिन्न बोलियों ने जिस गति से उन्नति की, इन सब बातों ने न केवल डुग्गर के युवक कवियों को अपनी मातृबोली में लिखने की प्रेरणा दी अपितु डोगरी कविता को अपने प्रदेश, जनता, संस्कृति और भाषा के गम्भीर प्रश्नों की ओर उन्मुख किया।

मेरे देसा दा शलैपा मेरी अक्खीं कन्ने दिक्ख,
एदे फुल्लें फुल्लें बिच हस्सै मेरा प्राण,
इनें जम्मी बटें मेरी मुन्डा दी पंछान ।

(दीनू भाई पन्त)

कुण आखदा डोगरे मरी गे दे?

जिदे आस्तै खड़ग डीडो नैं चुक्की,
जिदे आस्तै जिन्द जित्तो नैं बारी,
जे ओदे नैं मिलने गी मन तड़फदा ऐ,
ताँ'फी इस समें'गी'नि'हत्था गोआ'।
सम्बल होश कर बेल्ला बीतो नि जा! (यश शर्मा)

देसा गी मिटाना ते बनाना तुन्दै हत्थ ऐ!
फिरका परस्ती दी अग्ग जेडे लांदे न,
देसा आली एकता दी नीयें गी हलान्दे न,
हाथिया दे पैरा खल्ल पैर जियां सारे औन,
इस पापा अग्गे पाप सारे हार खाई बौन॥ (मधुकर)

नमीं अजादिये स्होड़ च आ!
जित्थें जरूरत ऐ लोकें गी तेरी
नवीं अजादिये उत्थें गै चल!
कड़कदी धुप्पा बी खेतरे जित्थें
नंगे पिण्डे मानु जोतै दे हल,
उच्चियां मैहल ते माड़ियां छोडिये
पुजा गै बिछे दे खेतरें ढल!
सुम्ने नैं जड़े दे देवतेई छोड़िये
मिट्टी नैं सने दे लोकें नैं रल!! (दीप)

थोड़ी नईं तलबा'च टब्बरै गी पालना,

उंजली दे पानी कन्ने डान कियां स्हालना,

उनकी कविता में 'फूलां दा कुर्ता' एक हरिजन किसान की निर्धनता का दु:खपूर्ण चित्र हैं। 'विधवा' में स्त्री की दुर्दशा का वर्णन है। शम्भूनाथ की कविता परस्पर विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण है। कहां तुलसीकृत रामायण का डोगरी पद्यानुवाद, कहां गजलों द्वारा जीवन के गिले-शिकवे और कहां 'कलर्क' जैसी कविता में मध्यम वर्ग की समस्याओं पर विवेचन !

यह प्रतिकूलता अन्य कवियों में भी है। परमानन्द अलमस्त कभी गान्धी और नेहरू के नेतृत्व पर विश्वास प्रकट करते हैं तो दूसरे ही श्वास में कांग्रेसी नेताओं पर लांछन भी लगाते हैं। उनकी बहुत सी कविताओं में 'ईश्वर अल्ला', 'राम रहीम' पर आस्था प्रकट की गई है लेकिन 'सुरग नई जान होन्दा पित्तल खड़काए दे, में वह इन शब्दों में सारे धार्मिक आडम्बर को मलियामेट कर देते हैं :

सुरग नेईं जान हुन्दा पित्तल खड़काए दे,
छैंने छनकाए दे, जां घड़ेयोल ठनकाए दे,
चढ़ी उच्चे मिम्बरा पर, हाकां देने आलेया,
करियै करबानियां, जगातां देने आलेया,
नकारें चोटां लानां एं ते तूतियां बजान्नां एं,
सैंखें नरसिंहें, फूकां फाकां देने आलेया।
बट्टें गी जीब-दान, जींदें दे लैं परान,
पितरें गी जाइयै सगातां देने आलेया।
मन्दरें मसीतें गुरुद्वारें देया मालका,
टोलकी गी थापां लाई भाखां देने आलेया !
आपूं ते गले जजमानें गी बी गालेया,
आपूं बिचें मानु लड़े तुन्दे गै पढ़ाए दे।

डोगरी कविता की विभिन्न प्रवृत्तियों का किसी क्रम से विश्लेषण करना इतना सरल नहीं। जो कवि मेरे इस लेख का विषय हैं वे प्राय: अभी विकास के क्रम से गुजर रहे हैं। यात्री अभी मंजिल की तालाश में हैं। केवल एक समानता सब में है, वह है इस ध्येय की कि समाज के तकाजों के अनुसार कवि

को भी जनता के जीवन को बदलने में अपनी प्रतिभा का प्रयोग करना चाहिये डुग्गर के पिछड़ेपन का एक चिन्ह जागीरदारी व्यवस्था में नारी के अधिकारों पर कुठाराघात था तो डोगरी कविता ने नारी की मान-प्रतिष्ठा स्थापित करने में यथोचित संघर्ष किया। दीनू भाई की कविताएं 'तू करगी मेरे नैं पैडें ? और 'गुज्जरी' रामनाथ शास्त्री की कविताएं 'चक्की', 'ऐ रातीं दा खीरी बेला' डोगरी काव्य में विशेष स्थान रखती हैं। दीनू भाई ने रूस की अन्तरिक्ष यात्री वेलेन-तीना को एक आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। गुज्जर स्त्री की स्वभाव सुलभ निडरता और सादगी के सन्मुख 'सभ्य' समाज का दम्भ और दर्प भूमिसात होते दिखाया है। रामनाथ शास्त्री ने ऊपर लिखित कविताओं में हमारे समाज की स्त्री के क्लेश का मार्मिक चित्रण किया है। 'पुड़ें दा मलाप तद्दैं सुर मिट्ठे लानीं एं' (चक्की) और 'रोज तला दी ठंडी गोदा जलदा जोबन स्हालन जन्दी' (ए रातीं दा खीरीं वेला)—शास्त्री जी की ऊपर लिखित कविताओं की इन पंक्तियों में बड़ा जोर है। नवोदित युवक कवि चरणसिंह ने भावावेश में नारी का दूसरा रूप पेश करके उसे झंझोड़ने की कोशिश की—

ओ सीता, ओ सती सावित्री, जे तूएं ही जे तूएं एं,
तां मोइये अज्ज तूं सुन्ने दी लंका दिक्खी की ललचोनी ?

मगर नारी की वेदना, उसकी दृढ़ता और कमजोरियों का जो चित्रण स्वयं डुग्गर की एकाकी कवयित्री पद्मा ने किया है वह नारी की स्वयं अपनी आवाज़ है :

ए राजे दियां मंडियां तुन्दियां न ?
आऊं गेई गोआची दी वरे थवां, मेरी जोत खवाची दों बरे थवां,
जिनें कम्बदियां डाल्लियां पुट्टीं लेईयां, ओ दन्दल दराटियां तुन्दियां न ?

आरम्भ में 'राजे दियां मंडिया' जैसी कविता में, व्यक्तिगत वेदना जिस स्वाभाविक ढंग से सारे समाज के दीन हीन वर्ग की असीम वेदना बनकर प्रकट हुई है, इस के दर्शन आगे चल कर पद्मा की कविताओं में बहुत कम होते हैं। राजमहल की ईंटें हमारे लहू से रंगी हुई हैं, (स्हाड़े लउए दा चेता करांदियां नीं) यह दीवारें खड़ी करने के लिए हम ने श्रम किया (स्हाड़े मूंडे' पर उतरे शतीर इन्थें) यह संकेत प्राय: लुप्त होते गये और उस की जगह करुणा, याचना तथा समर्पण ने ले ली :

दूर कुसै पहाड़ा दी पेठा जे औं इक नाड़ूगं होन्दी,
तुस बत्ता दे राही होंदे, दौं घुट्टें ओठें लाई लैन्दे......

तूं ऐं आ, आनी हत्थ लाडा नैं दे,

इनें हत्थुएं नैंनें गी छूई लैं औं

की एडे जेरा औन्दे ओ, साह रामा दा नईं लैन्दी औं।

विरहणी की एकनिष्ठा ने डोगरी-काव्य में कुछ मधुर गीतों की भी वृद्धि की। यदि इस में गाम्भीर्य की सृष्टि होती जाती तो पद्मा का डोगरी कविता में विशिष्ट स्थान निश्चित हो जाता लेकिन यह भावना स्थिर न रह सकी औ उसकी रचनाओं में अपने आप से असन्तुष्ट, भ्रान्त, क्लान्त मानव की अस्थिरत और दुविधा प्रकट होने लगी :

औं धरती गी सूरज दी बी चन्ना दी बी लोड़......!
औं खोली बैठी सार, कन्नैं सली बैठी फड़,
कुतै फसी गेआ चित्त, नां पार नां रोआर,
अज्ज कियां जाना पार.........?
जित्थें बी समुद्रै 'च कोई नाड़ू जन्दा, भावें गंगा,
ओदे कन्नैं होई लैनीं आं.........
और फिर यह क्षीण होता हुआ स्वर :
एस मुलखै दे रौले च, मेरा हर गीत डुब्बी आ
मेरा फी किश गोआची'आ, मेरा घर बार डुब्बी'आ

काव्य-क्षेत्र में पदार्पण करते समय कवयित्री ने कल्पना के जिस असीम गगन को देखा था :

निक्कड़े फंगडू, उच्ची उड़ान, जाइयै थम्मना कियां समान,
चाननियां गल कियां लानियाँ ?

उसका क्षेत्र सीमित हो गया। पद्मा की कविता डोगरी के लिए अमूल्य निधि है। इसके संरक्षण के लिए चिन्तन और दृष्टि में विशालता आवश्यक है।

उन कवियों की काव्य-धारा का स्रोत शुष्क न हो पाया जिनके चिन्तन में सामाजिक वर्ग चेतना का विकास होता गया।

दीनू भाई 'उठ मजूरा, जाग किसाना तेरा बेला आया ओ' कविता के बाद काफी अरसा प्रायः लुप्त रहे। लेकिन जब वह 'तूं कम्म करा, ते रुट्टी दे', 'जां इद्दर ओ, जां उद्दर ओ' की राह पर चले तो फिर एक बार उनकी कविता को जीवन मिला।

मधुकर की कविता को जब 'तद्दूं इतिहास रोन्दा ऐ', 'पापा आली पुन्ना

आली बत्त'' आदि कविताओं में पाप-पुण्य की लक्ष्यहीन विवेचना के बाद संकट का सामना था तो उस समय भी इसी वर्ग-चेतना ने उन्हें उभारा। उनकी 'कोल्हू', 'जुगै दी आस' कविताएं उन की प्रतिभा के उच्चतर स्तर की साक्षी हैं :

किन्ना चिर हुन झूटें विश्वासें दे खोपे पाने ?
किन्ना चिर हुन दान्दें आंगू अन्ने चक्कर लाने ?
किन्ना चिर हुन बोकरी दा डण्डा खिचदे रौहना ?
किन्ना चिर हुन मेदें आला तेल बनाने पौना ?
रूप जुगै दा बदला करदा, इक्कै पलटा खाना......।

(कोल्हु)

मोहनलाल सपोलिया ने भी कोरी भावुकता के भंवर से निकलने की यों चेष्टा की :

जनता ओ भाम्बड़ ऐ जिस विच सड़ी गे कई ज्हार,
कीती गरक फ्रांस च इसनै मलका दी सरकार,
होश करो इस देसै दे बड्डे सरमायादारो......!

दूसरे कवियों के मुकाबले में डोगरी कवियों ने समाज और समाज के परिवर्तन के बारे में ही अधिक लिखा तो ऊपर लिखित परिस्थितियों में यह स्वाभाविक था। कवियों ने ईमानदारी से जो अनुभव किया उसे न केवल काव्य-साधन का विषय बनाया बल्कि उसे जीवन का अंश भी बनाया। डोगरे कवियों का यह समूह १९४७ और उसके बाद भी डुग्गर के ग्रामों में गया और वहां न केवल जनता को कविता-पाठ द्वारा मुग्ध किया अपितु उसने भाषणों द्वारा, नयी विचारधारा जो जीवन में ढालने की प्रेरणा भी दी। चरणसिंह ने त्याग और बलिदान की आवाज दी :

इस लेई मोइये आं अस अपना जीवन सारा,
इस पीढ़ी दै अरपण करचै, औने आले ओस जुगै दी भेंट चढ़ाचै,
जिस जुगै इच मानु बस्सन, प्यार प्रीतें हिरख समोद्दें ।

कोई नारेबाज़ी नहीं। कहीं पार्टीबाजी राजनैतिक प्रापेगण्डा नहीं। बस जीवन को समझने, सीखने और ईमानदारी से व्यक्त करने की चेष्टा की गयी है। 'चरखा', 'डोली', 'दीआ बलै', 'कविता दी पंक्ति', 'डोला कुण ठप्पेया' 'हीले', कविताओं में मधुकर ने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा है किन्तु कला स्वयं सब कुछ कहती है। विचार धारा की सूक्ष्मता ही इन कविताओं का गुण है।

कन्डिया रौंहनेयां !

नइयों जकीन ते दिक्खी लै डौलें गी,
हिक्का दे जोरें गी, बीनियां फड़ी लै,
डांगें नैं लड़ी लै, छाती गी मिनी लै,
छिन्जा च धली लै, जाच धसमुन्नेगी,
गरने दा जोर ई, भरावा मखौल नईं !
झूठी जरोऐ नईं, ईना दे पक्के आं, गप्प नि मारदे
पच्छ नि स्हारदे,
खरे नैं खरे आं, बुरें नैं बुरे आं,
चढ़ै जे जुंगतां निरे गै खुंग आं।
गल्लें नि मन्नै ते हत्थें बी पौन्यां।

(मोहनलाल सपोलिया)

इस प्रकार आधुनिक डोगरी कविता का श्रीगरोश, अपने सीमित प्रदेश से प्यार की भावनाओं की अभिव्यक्ति से हुआ। इसके स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों पक्षों का प्रादुर्भाव हुआ। एक विचारधारा जो रजवाड़ाशाही से प्राप्त विशेष अधिकारों के छिन जाने पर दुखी वर्ग का आर्तनाद थी, राजाओं महाराजाओं के गुणगान, इस भूमि को कृतार्थ करने वाले 'ऋषि मुनियों', 'देवी देवताओं' की स्तुति इत्यादि निराधार और भ्रामक धारणाओं के रूप में सान्त्वना मात्र थी। रघुनाथसिंह सम्याल, और किशन समैलपुरी की रचनाओं में देश और जाति के बारे में जो दृष्टिकोण मिलता है उसमें उसी प्रकार के नैराश्य और कटुता का समावेश है।

रघुनाथसिंह सम्याल की इन पंक्तियों में इसी मनोदशा का वर्णन है :—

पाले दी न्हार; बसाह नि कोई बी
डूंगे दरेयाएं दी थाह नि कोई बी,
बेड़ी, मञ्ज मलाह नि कोई बी।

इसी तरह किशन समैलपुरी की कविताओं—'सुरगै दी गल्ल नि ला अड़ेया' 'औं उस मुलखै दा पैंछी आं', 'मां तेरे दुदै दी सगन्ध खाई आखनें' इत्यादि में काव्य के सुन्दर अंश मिलते हैं और जोरदार आह्वान भी, परन्तु वास्तविक समस्याओं का विश्लेषण और भविष्य का कोई स्पष्ट चित्र न होने के कारण सामूहिक रूप में इन कविताओं से निरुत्साहित कर देने वाली खीज प्राप्त होती

है। दूसरे कुछ कवि भी पुरातन से मोहवश ऐसी ही उलझनों में फंसे रहे। परन्तु १९४७ के बाद नवचेतना की जो लहर उमडी वही मुख्य धारा बनी। इस से पहले दीनू भाई को अपने देश का यश-गान करने के लिए 'वीर गुलाब' लिख कर पड़ौसी राज्य से जम्मू के डोगरा राज्य की लड़ाई के कथानक का सहारा लेना पड़ा था। इस ऐतिहासिक गाथा में महाराजा गुलाबसिंह का शौर्यगान है और उनको डुगर का प्रतीक बना कर प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इस पुस्तक को काव्य गुणों के होते हुए भी उतनी ख्याति प्राप्त नहीं हो सकी जितनी कि दीनू भाई को उनकी जनसाधारण के बारे में लिखी गई कविताओं से मिली। डोगरी कविता की दिशा यदि आज प्रगति की ओर है तो उसका कारण यह है कि डोगरी कवियों ने समस्त देश की प्रगतिशील धारा से प्रभाव ग्रहण करके अपना रास्ता बनाने में जागरूकता का प्रमाण दिया। दीनू भाई ने "वीर गुलाब" के बारे में आम लोगों की प्रतिक्रिया से कोई अनुभव ग्रहण किया अथवा नहीं, किन्तु उन्होंने इसके बाद बिलकुल उल्टा मोड़ ले लिया। इसके बाद दीनू भाई की ख्याति का काल 'उट्ठ मजूरा जाग कसाना तेरा बेला आया ओ' आदि से शुरू होता है।

यह सम्पूर्ण काफिले के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इसमें कहीं कहीं नारेबाज़ी से काम भी लिया गया परन्तु समय के साथ-साथ उस धारा-प्रवाह में अधिक विस्तार और गहराई पैदा होती गई। मधुकर की यह पंक्तियां देखिये :

नमां लिखो इतिहास ओ साथी, नमां लिखो इतिहास।
ए इतिहास ते बैंसावलीऐ राजें ते महाराजें दी।
ए इतिहास कसीदाखानी, कलगी आलें ताजें दी।
ए रत्तू नें लिखेया राजें, तलवारें दे रौलें च,
ए जुल्मा दी कत्थ लखोई मुहमें आली तौलें च।
हुन स्हाड़ा इतिहास लखोना परसें दे लश्कारें नें,
उन स्हाड़ा इतिहास लखोना थोड़ें दी ठनकारें नै।

डोगरी साहित्य में अलोचना का अभी प्रायः अभाव है। आश्चर्यजनक बात है कि अभी तक आलोचनात्मक रूप में जो कुछ लिखा या कहा गया है उस में भी इस तथ्य को खुल कर स्वीकार नहीं किया गया कि हिन्दी उर्दू जैसी समृद्ध भाषाओं की भांति डोगरी साहित्य में 'रूढ़ीवादी' और 'प्रगतिवादी' धारओं के

सम्बन्ध में या किसी और ‘वाद’ पर कोई विवाद नहीं रहा और न कवि इस उधेड़ बुन में पड़े रहे कि ‘साहित्य-जीवन के लिए’ हो अथवा ‘स्वान्त: सुखाय’, परन्तु डोगरी कविता ने मुख्य रूप से प्रभाव न केवल अपने देश बल्कि विश्व की क्रान्तिकारी लहरों से भी ग्रहण किया। दुनिया के किसी भी सजग और चेतन कलाकार की भान्ति, डोगरी कवि के मन में विश्व की धड़कन मिलती है। अगर दुनिया के किसी भी हिस्से में जुल्म होता है तो उस की जबान खामोश नहीं रहती।

रामनाथ शास्त्री ने कांगों के लुमम्बा की साम्राज्यवादी षड्यन्त्र द्वारा निर्मम हत्या पर उनकी विधवा पत्नी को “वधाई पत्र” में लिखा :

तेरा ओ कन्त, ओ तेरा लुमम्बा,
अज्ज जिसदे अमर बलिदानै,
हिलाई दित्ता ऐ दुनिया गी,
जगाई दित्ता ऐ कांगों गी,
झुनक दित्ती ऐ अफ्रीका दी गैरत गी......
ओ किरण सुच्ची, जेड़ी न्हेरे’च हारी नेई।

दीप के शब्दों में :

जदूं गोली लमुम्बे दै कलेजै पार हुन्दी ऐ।
मेरे गीतें दे छन्दें दा कलेजा धाल होई जन्दा।
मेरे हर अक्खरै दे हत्थै च तलवार हुन्दी ऐ।
मेरा हर गीत उस बेलै लोहे दी ढाल होई जन्दा।

दीप ने “काला मानु” में अपनी लेखनी को अफ्रीका के हवशी के कन्धों पर एक बन्दूक के रूप में देखा।

१९६२ में संयुक्त राष्ट्र के अन्दर अफ्रीकी एशियाई देशों की संख्या बढ़ने पर साम्राज्यवादी शक्तियों ने उस संस्था के ढांचे को बदल देने की कोशिश की। इस पर शास्त्री जी ने ‘काले [illegible]थ’ में अफ्रीकियों को यों सचेत किया :—

अपने काले हत्थें गी हुन कुसै बी मण्डी बिकन निं देओ......;
न्यां अपने लेई हुंन दूएं गी पंच निं बदेओ,
फी ए काले हत्थ थुआड़े, कोई मुड़ियै कैद करी लै।

इस अन्तर्राष्ट्रीय और मानववादी दृष्टिकोण ने जहां दार्शनिक स्तर पर हृदयस्पर्शी जनतन्त्रीय भावनाओं को प्रेरणा दी वहां बड़ी हद तक समस्याओं

के मूल कारणों की तह तक जाने की दृष्टि भी पैदा की। अत्यन्त उच्च कोटि की रचनाएं ऐसी हैं जिन में सामाज के अन्दर शोषण करने वाले वर्गों पर सीधी चोट की गई है और कवि शोषित जनता के समर्थन में आवाज़ उठाता है। तारा समैलपुरी की कविताएं 'कन्ढी दा बस्सना', फौजी पिनशर', 'जादू जड़ियां' और 'बावे', 'ए केड़े साहब न लगै दे' इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

पुच्छेया बाबा जी, पिन्शन ऐं किन्नी ?
हत्थै नैं दस्सेया औंगलैं जिन्नी !
जित्ती लैन्दा मानु मारके जंग ?
मानु गी ह्ऱान्दी ऐ, भुख ते नंग !

(फौजी पिनशनर)

चलो दस्सां कंढिया दे लोक कियां जींदे न,
सोए आली ब्हारा बिच केड़ा पानी पींदे न,
कदे कुतै कुट्टी लैंता साकड़ी दा छच्चा ऐ;
इयैं स्हाड़ी रिबड़ी ते इयै स्हाड़ा लच्छा ऐ।
बड़ा औखा होंदा लोको कंढिया दा बस्सना,
कुक्कड़ै दी बांगा उट्ठी पानियै गी नस्सना॥

(कंढिया दा बस्सना)

इसी तरह 'जादू जड़ियां' में बीमारी का डाक्टरी इलाज कराने की बजाय जादू-टूनों से बीमार की जान खतरे में डालने वाले और 'बावे' में साधुओं के भेस में बेकार की कमाई खाने वाले लोगों को आड़े हाथों लिया गया है। दीनू भाई की तरह तारा समैलपुरी भी भाषा और विषय की दृष्टि से ग्रामीण जनता की साहित्यिक अभिरुचि के लोकप्रिय कवि हैं।

शम्भूनाथ की कविता 'कलर्क' में निश्चित आय वाली गरीब माध्यम श्रेणी का कितना ज़ोरदार समर्थन है :

हाकमें दै अग्गें जन्दे सौ बारी संगना,
आठरे दे चूचे आंगू पुल्ले पुल्ले लंगना,
'आं जी, आं जी' करी जाना, कन्ने हत्थ मली जाना,
झक्की-झक्की कम्म-काज पुच्छना ते मंगना।
बिना दस्से करी जाना, करी करी मरी जाना,
साह नि लैना डरै कन्नैं, उच्चे बी नि खंगना,

रामलाल शर्मा, चरणसिंह, नरसिंहदेव जम्वाल ने भी अपने भीतर झांका है अपने आराध्य को निहारा है और अलौकिकता के संसार में विचरण किया है परन्तु वे एक मानव की तरह प्रेम की वंशी से मन्त्र--मुग्ध से प्रतीत होते हैं। वह दूर की कौड़ी लाने की धुन में निरर्थक किस्म की कविता नहीं करते बल्कि गालिब के शब्दों में 'बना कर फकीरों का हम भेस गालिब—तमाशाए अहले करम देखते हैं'। ओंकारसिंह आवारा काफी देर 'ब्राह्ममुखी' रहे, 'औं आवारा जन्म दा—मेरे पैर कदे नि रुकदे' किन्तु अन्त में 'अन्तर्मुखी' हो कर आध्यात्मिकता के भंवर में डूब गये।

डुग्गर के कवि की दार्शनिक दृष्टि पैनी होती चली गयी है और जीवन की अनेकांगिता को लपेट में लेने का यत्न करती है। परन्तु डोगरी कविता आध्यात्मिकता के माया जाल में नहीं फंसी। स्वर्गीय स्वामी ब्रह्मानन्द के 'मान-सरोवर', 'गूंगे दा गुड़' इत्यादि पाँच काव्य-ग्रन्थ छपे जिनमें उन्होंने जीवन की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए आध्यात्मिकता का और मानसिक शान्ति के लिये परमार्थ का पथ निर्देशित किया है। स्वामी जी की काव्य–प्रतिभा का आदर अवश्य हुआ परन्तु उनकी कविता की यह भक्ति-शैली और उस की प्रवृत्तियां प्रायः प्रचलित न हो पाईं।

श्री मधुकर ने 'एकोत्तरशती' के नाम से टैगोर की १०१ कविताओं का और श्री रामनाथ शास्त्री ने 'गीताञ्जलि' का डोगरी में पद्यानुवाद किया है। शास्त्री जी ने भतृहरि के नीति-शतक, वैराग्य-शतक, और श्री शम्भूनाथ ने तुलसीकृत रामायण को डोगरी रूप दिया। जिन लोगों ने इन अनुवादों का अध्ययन किया है वह उनकी कला और उच्चस्तर का आसानी से अन्दाजा कर सकते हैं। अलमारियों में बन्द, यह बौद्धिक परिश्रम भविष्य में शिक्षित लोगो के अध्ययन के लिए रुचिकर होगा। अब तक लोक-प्रियता उन ही मौलिक रचनाओं को प्राप्त हुई है, जो रहस्यमय आध्यात्मिकता की भूल भुलैओं में न उलझ कर जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं। मधुकर जनसाधारण की समझ में आ जाने वाली कविता से ख्याति प्राप्त करके भी कभी-कभी इसी अस्पष्ट और क्लिष्ट शैली में उलझ जाते हैं। यह दोष अभी प्रायः सभी कवियों में हैं। 'देशभक्ति', 'देश-रक्षा' के नाम पर बहुत कुछ लिखा गया जो साहित्य का स्थायी अंग नहीं बन सकेगा। क्योंकि नारेबाजी और तुकबन्दी देश के लिये सच्चे प्रेम की प्रतीक नहीं।

कवियों ने कला के सभी पक्ष संवारे हैं। विभिन्न शैलियों और रूपों को अपनाया है। छन्दबद्ध मुक्तक, चौपदे, कुण्डलियां, तवील नज़में, सवैये, दोहे, रुबाइयां, गीत और गज़लें सब कुछ डोगरी कविता में मिलेगा। गीत तो पहाड़ी लोकगीतों के सीधे प्रभाव का फल हैं। डोगरी भाषा भी मानो गीतों के लिये ही गढ़ी गई है। यश, अलमस्त, किश्न समैलपुरी और पद्मा ने इस दिशा में सराहनीय कौशल दिखाया है। मगर उन में अधिकतर कृतियां संगीत और सुर के आधार पर श्रोताओं के मनोरंजन का तत्कालीन साधन मात्र ही सिद्ध होती हैं। किश्न समैलपुरी के गीतों में किंचित् हल्कापन भी है और कई गीत लोकगीतों के ऋणी हैं। यश को अपनी मधुर आवाज का सहारा लेना पड़ता है। हां अब उन के गीतों में वज़न आने लगा है। अलमस्त के चुने हुए गीतों का यदि संग्रह किया जाए तो पहाड़ी जीवन की बहुत सी हृदयग्राही झांकियां मिल जायेंगी क्योंकि उन का आधार अनुभूति है, केवल शहरी वातावरण में किया गया काल्पनिक अभ्यास नहीं।

गीतों को केवल उनकी गेयता के आधार पर परखना एक भूल है। इस का तजुर्बा डोगरी में काफी हुआ है। रेडियो से 'स्वर बद्ध' 'वाद्ययन्त्रित' भक्ति रस के कुछ डोगरी गीत, प्रसारित होने लगे हैं पर वे न मीरा का दर्द रखते हैं और न कबीर की दार्शनिक अनुभूति। कुछेक कवियों के देवी देवताओं और ईश्वर की स्तुति में लिखे गये गीत उनकी साहित्यिक प्रतिभाओं के सही प्रतिबिम्ब नहीं हैं। इसके मुकाबिले में ये गीत **'तारे गिनदियां रात बिहाई होंदी'** (यश) **'जोबनै दा मेला** (मधुकर) **'ओ कुण शैला'** (शास्त्री), जीवन की वास्तविक कोमल अनुभूतियों से ओतप्रोत होने के कारण सर्वप्रिय होने की क्षमता रखते हैं।

डोगरी साहित्य के सृजन-कर्त्ता एक नये साहित्य को जन्म दे रहे हैं। उसके प्राय: सभी कर्णाधार जीवित हैं और संघर्षरत हैं। कइयों के भविष्य के बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। वयोवृद्ध कवि बसन्तराम पढ़ लिख नहीं सकते। हास्यरस प्रधान लम्बी कविताओं का एक भण्डार उनके मस्तिष्क में एकत्रित है। इस में आज भी वृद्धि होती जा रही है। उन में छन्द, भाषा, शैली इत्यादि के दोषों का होना स्वाभाविक है। किन्तु हास्यरस में इतनी अर्थपूर्ण और सीधी समस्याओं से सम्बन्धित और कवि सम्मेलनों में धूम मचाने वाली इन कविताओं को सुरक्षित करने का प्रबन्ध और उनकी त्रुटियों को दूर करने में कवि को सहयोग न दिया गया तो यह कविता उन के जीवन के साथ ही समाप्त हो जायेगी।

दुनिया के बड़े साहित्यों की तरह डोगरी कवि कोई मौलिक महाकाव्य नहीं दे पाया। कोई कवि किसी विशेष पहलू में अपने को दूसरों से बहुत ज्यादा भिन्न भी नहीं कर पाया। वे अभी बुद्धिजीवियों की सीमित परिधि में एक दूसरे के बहुत निकट हैं। उन की सोच और प्रणाली में सामूहिकता का नतीजा यह है कि अपनी विशिष्ट गोष्ठियों के अतिरिक्त कविता पर आलोचनात्मक दृष्टिपात नहीं किया गया। इस का समय अभी आयेगा। हिन्दी अथवा उर्दू की भान्ति दिखावे के लिए डोगरी कविता पर भी आलोचना के सभी मापदण्ड लागू किये जा सकते हैं। परन्तु इस से वह उद्देश्य पूरा नहीं होगा जो कि सइ समय अभीष्ट है डोगरी कविता का परिचय अपने दूसरे भाषा-भाषी मित्रों से कराया जाए। डोगरी जानने वाले भी कितने हैं जो दावा कर सकते हैं कि उन्होंने पर्याप्त मात्रा में डोगरी कविता को पढ़ा या सुना है? इस साहित्यिक धारा में मेरी तरह एक लहर की भांति स्वयं बहते हुए कोई इसका आदि से ले कर अन्त तक सर्वेक्षण करने में कहां तक सफल हो सकता है? इस प्रवाह में कौन कहां तक चल सकेगा? कई कवि बड़ी देर से कुछ लिख नहीं पा रहे। कवि सम्मेलनों में ग्रामों से आए हुए 'साहित्यिकता' की छाप से वंचित अनेकों उदीयमान कवि जनता में प्रिय होते जा रहे हैं। बीस-पचीस वर्षों में डोगरी साहित्य की उन्नति गति—अवरोध से रोगाग्रस्त हो जाएगी अथवा नये विचारों की संजीवनी इसका स्वास्थ्य बनाए रहेगी? बहुत से प्रश्नों का उत्तर अभी मुझे भी समय से पाना है।

हमारा साहित्य सीधे तौर पर राजनैतिक तब्दीलियों की पैदावार है। हमारे कवि राजनैतिक उथल-पुथल में सक्रिय रहे हैं। उन्होने यहां के राजनैतिक जीवन पर प्रभाव भी डाला है। समाज से उनका वास्तविक सम्बन्ध है। इस लिए निराशापूर्ण और कठिन परिस्थितियों में भी डोगरी कविता जिन्दा रहेगी। जहां वह बन्द गली में रुक जाएगी, मुड़ कर नई डगर तलाश कर लेगी। डोगरी, संविधान द्वारा उपेक्षित भाषा सही परन्तु इस से इस के विकास की सम्भावनाओं और इस में परिपूर्णता को प्राप्त करने की योग्यताओं का क्षय नहीं हो सकता। जिस प्रकार डोगरी ने गजल को अपना लिया है, डोगरी के शरीर में गजल की आत्मा जिस तरह अवतरित हुई है यह इस छोटी सी 'पिछड़ी हुई बोली' में निहित विनम्र शक्ति की द्योतक है।

गजलों के इन 'शेरों' के साथ मैं इस लेख को समाप्त करता हूं:

वेदना दुनिया दा अनमोल खजाना साथी,
न कोई बडदा, न लैन्दा, न दुहारा दिन्दा।

(शम्भूनाथ)

ए स्हाड़ा गै जिगरा हा बनजाइयै फी वी,
तुसें जेकी आखी असें नि ओ मोड़ी।

(नरसिंहदेव जमवाल)

हिरखै दी रीत रस्म ऊँआं गै जियां'क ही,
कुर्ते दा ओ लंगार ऊंआं गै जियां'क हा।

कंडें नै त्रुम्बे त्रुम्बे दे अस आं चूंडोए दे,
बाए ! लंगारें कन्नैं आनि-आनियै नि खैहर।

लंगार कुर्ते दा हुन रेया नेईं क एदियां ओड़यां लीरां लीरां,
न हुन उद्दड़ दा ऐ, न हुन सनोन्दा ऐ, न इसगी पौन्दी ऐ होर टाकी।

चोला गै बदल, फट्टी दी लीरें दा मोह तोआर
किन्नाक चिर गजारगा सीन्दे दरेड़दे ।

(दीप)



फूलों की बस्ती में कविता

शिबनकृष्ण रैणा



वैसे तो कुछ विद्वान् आधुनिक कश्मीरी कविता का आरम्भ सन् १९२८ में मानते हैं, किन्तु वास्तव में यदि कश्मीरी कविता को 'आधुनिकता' के दर्पण में देखें तो सन् १९४७ के पश्चात् ही उस की प्रतिच्छाया स्पष्ट से स्पष्टतर दिखलाई पड़ेगी।

सन् १९४७ से सन् १९६६ तक की उन्नीस वर्षीय अवधि में जो काव्य-रचना हुई, उसे आधुनिक कश्मीरी कविता की संज्ञा दी जा सकती है। इस काल की कविता में प्रमुख रूप से दो प्रकार की प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं—१. क्रान्तिकारी प्रवृति और २. प्रतीकात्मक प्रवृत्ति। इन दोनों प्रवृत्तियों के स्वरूप, विकास एवं परम्परा के पीछे वही दर्शन एवं भाव-भूमि विद्यमान है जिन की प्रेरणा से हिन्दी में प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविता का जन्म हुआ।

सन् १९४७ का वर्ष कश्मीर के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इसी वर्ष कश्मीर की घाटी पर कबाइलियों का आक्रमण हुआ जिस के फलस्वरूप अनेक देशभक्तों ने एकत्र हो कर पाकिस्तानियों के विरुद्ध स्वदेश-प्रेम से ओत-प्रोत कविताएं लिखीं। 'कौमी कल्चरल महाज़' के नाम से एक साहित्यिक परिषद की स्थापना की गई जिस में क्रांतिकारी कवियों, साहित्यकारों तथा अन्य कलाकारों ने मिल कर अपने भावों को अभिव्यक्त कर उन्हें जनता तक पहुंचाने का प्रयास किया। आधुनिक कश्मीरी कविता में यह क्रांतिकारी प्रवृति लगभग छः वर्षों तक विद्यमान रही। विद्वानों के अनुसार सन् १९४७ से ले कर सन् १९५३ तक की काव्य-धारा कश्मीरी काव्य-भंडार की अमूल्य निधि है।

इस अल्पावधि को कश्मीरी काव्य को स्वर्णिम अवधि कहा जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह काल क्रान्ति का था, जिस के फलस्वरूप प्रत्येक कवि की काया में स्फूर्त्ति तथा जीभ पर देश भक्ति के स्वर गूंज रहे थे, तथापि इस काल की कविता की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उस का आंतरिक सौन्दर्य क्रान्ति के क्रूर एवं रोषपूर्ण क्रन्दन द्वारा दब नहीं गया। कविता का सौन्दर्य ज्यों-का-त्यों बना रहा है।

क्रान्तिकारी प्रवृत्ति से ओत-प्रोत आधुनिक कविता के प्रमुख कवि हैं—३. अब्दुल अहद आजाद, गुलाम अहमद महजूर तथा दीनानाथ नादिम। इन तीनों कवियों की कविताओं में पुनर्जागरण एवं देश-प्रेम के ओजपूर्ण स्वर व्याप्त हैं। आजाद के क्रान्ति से पूर्ण जागरण-गीत की कुछ पंक्तियां देखिए—

सअजदअ कमन छुख करान,
खोफअ कहन्दि छुख मरान,
इन्कलाब अन, इन्कलाब अन,
जोश अंदरिमि त्वंदरक्यि दिल अख छठ,
जटि हंदि पअठ्य प्यतअ अरखलिनय प्यठ,
पोश बननय चलि खार खारो हो,
गछता बेदार हा वतन दारो हो।

(रे देशवासी। तू किन के आगे झुकता है? किन के डर से मरता है? तू क्रान्ति ला, क्रान्ति ला! तू मन की आग भड़का दे, बिजली बन कर जहरीले पेड़ पर गाज की भान्ति गिर पड़, तभी फूल निडर हो कर खिल उठेंगे। जाग, हे देश प्रेमी। जाग!!)

आजाद की भाषा में ओजगुण की प्रधानता है। अपनी भाषा को ओजस्वी बनाने के लिए उन्होंने भाषा को कहीं-कहीं तोड़ा-मरोड़ा भी है। महजूर की कविता में आजाद की अपेक्षा कला का निखार अधिक है। इस के अतिरिक्त महजूर ने प्रायः कोमल शब्दों का ही प्रयोग किया है। महजूर की एक प्रसिद्ध कविता का अंश देखिए—

वलो हा बागबानो, नव बहारूक शान पैदा कर,
फलन गुल गथ करन बुलबुल, तिथिय सामान पैदा कर,
अगर बुजनावहन बस्ती गुलन हन्ज जाव जीरो बम,
वुन्युल कर, बाब कर, गगराय कर, तूफान कर।

(रे माली! आ और नए बसंत का सन्देश देने के लिए तैयार हो जा।

ताकि प्रत्येक फूल खिल उठे और बुलबुल उस को देख कर चहचहा उठे। यदि तू फूलों की बस्ती को जगाना चाहता है तो माधुर्य तथा रस से भरे हुए संगीत के तारों को झंकृत कर दे। इस पर भी अगर वह न जागे, तो भूकम्प ला, आंधी ला, बादलों का गर्जन पैदा कर !)

महजूर की कविता में क्रान्ति अपने प्रशान्त, संयमित तथा मर्यादित रूप में उपस्थित हुई है। उस में आजाद की भान्ति परिस्थितियों के प्रति अति विद्रोहात्मकता नहीं।

कल युद्ध छिड़ने वाला है, तो कल न हो

'सुनते हैं कल युद्ध छिड़ने वाला है, तो कल न हो' इस भावानुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति नादिम साहब की 'म्य छम आश पगहअच' शीर्षक कविता में भावी युद्ध की करालता का परिचय दे कर कवि ने वर्तमान की सुख-शान्ति एवं निश्चिन्तता को खतरे से पूर्ण दिखलाया है। कल्पना कीजिए कि एक नन्हा बालक गोद में सिमटा निश्चिन्त रूप से अपनी माता के स्तनों से दुग्ध-पान कर रहा है। माता अपने लाडले की मुख-छवि को बार-बार निहारती है और मन-ही-मन झूमती हुई अपने भाग्य को सरहाती है। कभी शिशु के मुखमंडल को देखती है तो कभी उस के विभिन्न कोमल अंगों को चूमती है। उसे लगता है जैसे इस समय सकल ब्रह्माण्ड की विभूति उस की गोद में है। अभी वह इस विभूति का पूर्ण रूप से आनन्द भी नहीं ले पाती कि क्रूर काल का क्रन्दन उसके कानों में सुनाई पड़ता है। युद्ध छिड़ जाता है, उस की दुनिया बर्बाद हो जाती है। इसी लिए कवि कहता है—'युद्ध छिड़ने वाला है, तो कल न हो।'

प्रतीकात्मकता का उदय

सन् १९५३ के बाद राजनीतिक परिस्थितियों की स्थिरता के कारण कश्मीर में शान्ति का वातावरण स्थापित होने लगा। फलतः कवियों की विचार-धारा में भी नए परिवर्तन होने लगे। नई भावभूमि की सृष्टि हुई। नई परिवर्तित परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप नए मूल्यों एवं प्रतिमानों की प्रतिष्ठा होने लगी। नए विषयों, नए प्रयोगों, नए उपमानों आदि का संचयन होने लगा। नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि मूल्यों में विशेष परिवर्तन हुआ। कविता में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति समाहित होने लगी। उस में समष्टिगत भावों की अपेक्षा व्यक्तिगत भावों को प्रधानता दी जाने लगी। वर्ण्य-विषय की विविधता के साथ-साथ कविता की शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ। रूपक-काव्य, अतुकान्त कविताएं, छोटे गीत (सानेट) आदि विविध विधाओं को अपनाया जाने लगा।

इस काल की कविता की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उस में प्रतीकात्मकता की प्रधानता प्रमुख रही। इसी विशेषता के आधार पर इस काल की प्रवृत्ति को 'प्रतीकात्मक प्रवृत्ति' से अभिहित किया जाता है।

आधुनिक कश्मीरी कविता ने प्रायः फारसी से प्रभावित हो कर अपने प्रतीकों का संचयन किया है; जैसे कि गुल, बुलबुल, सैयाद (शिकारी), तूर, मूसा आदि। इसी प्रकार आशा के लिए प्रात, पराधीनता के लिए जंजीर आदि प्रतीकों की संयोजना की गई है। इस प्रतीकात्मक प्रवृत्ति के प्रमुख कवि हैं—**रहमानराही और अमीन कामिल**। दीनानाथ नादिम की कुछ-एक कविताएं ऐसी है जिन में प्रतीकात्मकता की प्रधानता पाई जाती है। रहमान राही की एक प्रतीकात्मक कविता का भावार्थ देखिए—

'कल आधी रात को मेरे विचारों का धागा टूट गया। चित्त-रूपी वन-छाया में मैं ने एक बाज को पहचान लिया, उस की चोंच से कबूतर का लहू टपक रहा था। दीवार के साथ ज्यों ही मैं पीठ लगा कर बैठा, तब दीवार की सारी ठंढक मेरी छात्ती में घर कर गई। इसी बीच संदूक पर से एक चूहिया ने छलांग मारी और अलमारी की ओर छिप गई। अलमारी पर कुर्ते के बदले एक बिल्ली लटक रही थी। मैं ने आंखें मूंद कर रजाई को अपने सर्द कन्धों पर डाल दिया। इतने में विस्तरे पर रखी कांगड़ी उलट पड़ी और उस की गर्म-सर्द राख मेरे पांव के नीचे बिखर पड़ी। तभी बाहर से कानों में उल्लू का चीत्कार सुनाई पड़ा।' इस कविता में एक ऐसी मनहूस रात का वर्णन है जिस रात कवि को अपने चारों ओर मृत्यु के लक्षण दिखाई पड़े। मृत्यु सम्बन्धी प्रतीकों की संयोजना तथा वातावरण-सृष्टि द्रष्टव्य है।

ऐ मेरे खोए हुए प्रेम, आ!

अमीन कामिल की कविताओं में प्रतीकात्मकता के साथ-साथ दर्शन का सौन्दर्य भी व्याप्त है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

जेहनअकिस बालथंगिस प्यठ
छु त्युथुय मत्र कोल शीन
सुर सन्यास मलिथ,
लोलमचव चश्मव तुछान,
न्यजबान अछ छअ्र मगर,
नजरअ छअ थावान मान्ये,

सिरी नय शांलि तअ

पाताल छू बेदार अलाव ।

(मन की पर्वत-रूपी चोटी पर अब भी वैसा ही विचारों वाला बेद का वृक्ष संन्यासी की तरह भभूत मले उदास आंखों से कुछ देख रहा है। आंखें तो गूंगी हैं, परन्तु दृष्टि मन के विचारों को प्रकट कर रही है। सूर्य न चमके तो क्या, पाताल में फिर भी अग्नि दहक रही है। ऐ मेरे खोए प्रेम आ! और यह मेरी दुनिया संवार दे। देख वृक्ष की टहनी पर मेरा भूत रूपी बन्दर अपनी बोली बोल रहा है। न जाने वीरान राहों के दीवाने किस मरघट में जल कर मर गए ।)

दीनानाथ नादिम की 'नावद तअ टुयठबन' तथा कोठि दरवाजअ प्यठअ गरअ ताम' आदि कविताएं प्रतीकात्मक हैं। आधुनिक कश्मीरी कविता की प्रतीकात्मक कवित जो नवोदित तरुण कवि योगदान दे रहे हैं, उन के नाम हैं—चमनलाल चम फिराक, ख्याल, संतोष आदि ।



डोगरा राजवंश और संस्कृत



गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

डुग्गर धरती वीरता की बपौती साथ सँजोए हुए साहित्यपरंपरा की दीपशिखा का प्रकाश फैलाती आ रही है। साहित्य की दिशा में इसका अतीत स्वर्णमय है। विशेषकर यह भूभाग संस्कृत साहित्य का केन्द्र रहा है। स्थानीय संस्कृत साहित्यकारों की परंपरा के संदर्भ में प्रतीत होता है कि जम्मू-पति महाराज ब्रजराज देव के युग से संस्कृत वाङ्मय का यह प्रवाह महाराजा रणबीर सिंह के युग तक अविच्छिन्न रहा है। महाराज ब्रजराज देव के पूर्व की ऐतिहासिक कड़ी उपलब्ध नहीं होती, किंतु उस युग से संबधित संस्कृत साहित्य की यह ऐतिहासिक शृंखला रणवीर सिंह के युग से मोड़ खाती हुई, अन्य जम्मू शासकों के युगों को भी अपने साथ संजो कर वर्तमान युग तक पहुंचती है। महाराज ब्रजराज देव का समय संवत् १८०० से प्रारंभ होकर १८४३ तक चलता है जैसे कि उनके दरबारी कवि दत्तू ने संस्कृत छंदों में लिखे हुए अपने कृष्ण महिम्न स्तोत्र में स्पष्ट लिखा है :

नागदृग्गज भू संज्ञे (१८२८) वर्षे विक्रम भूपतौ,
स्तवोऽयं कृष्ण जन्माहे दत्तेनानाय पूर्णताम् ॥

महाराज ब्रजराजदेव संस्कृत के महान् अनुरागी थे। जम्मू से निराश होकर वे बिलावर में जा बसे। परन्तु वहां भी संस्कृत के प्रेम का संवरण नहीं कर पाए और दत्तू तथा गंगराम जैसे संस्कृत कवियों को उन्होंने यहीं पर रहते हुए अपने दरबार में आश्रय दिया। ब्रजराजदेव जम्मू के प्रतापी राजा रणजीत देव के पुत्र थे। किन्तु रणजीत देव अपने छोटे पुत्र दलेल सिंह को अधिक चाहते

थे। राजदरबार में अपने प्रति पिता की उपेक्षा देखकर ब्रजराज रूठकर बिलावर में रहने लगे। इधर दलेलसिंह राज्य के सर्वेसर्वा रहे, परन्तु रणजीत देव के अंतिम दिनों में जसरोटे का राजा स्वेच्छाचारी बन बैठा। रणजीत देव ने उस का दमन करने के लिये दलेल सिंह को अखनूर राज्य के कुछ अधिकारियों के साथ जसरोटे की ओर भेजा। वहाँ पर अखनूरियों के साथ उसकी टक्कर हुई। अंत में किसी दूसरे समय अखनूरियों ने दलेल सिंह को भगा दिया, जिससे रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् ब्रजराज बिलावर से आकर जम्मू की राजगद्दी पर आसीन हुए। अपने पिछले लम्बे प्रवास के समय ब्रजराजदेव ने संस्कृत साहित्य की जो सेवा की उसका पूर्ण विवरण तो नहीं मिलता, किन्तु उपर्युक्त दो संस्कृत कवियों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने इस परंपरा को अग्रसर किया। संस्कृत के ये दोनों कवि दत्तू तथा गंगाराम उस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इनकी कई रचनाएं भी होंगी जो अनुपलब्ध हैं। किन्तु दत्तू रचित 'कृष्ण महिम्न स्तोत्र' तथा गंगाराम रचित 'मामल्लाष्टक' अब भी विद्याविलास प्रेस से छपे हुए यत्रतत्र मिल जाते हैं। श्री कृष्णाष्टक पर कवि ने स्वयं संस्कृत टीका भी लिखी है जो उनके व्याख्या-चातुर्य का परिचय देती है। श्लोक सब के सब शिखरिणी छंद में लिखे गये हैं और इनकी संख्या ३२ है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कवि की दो और फुटकल कविताएँ मिलती हैं जो प्रातः-साय कृत्य से संबन्धित हैं। ये दोनों कविताएं भी श्री कृष्णाष्टक के अन्त में पृथक् रूप से छाप दी गई थीं।

श्री गंगाराम रचित मामल्लाष्टक के आठ श्लोक महाराज रणवीर सिंह के दरबारी विद्वान एवं हिन्दी कवि श्री नीलकंठ रचित 'कीर्तिविलास' में उद्धृत हैं। इस समय इन दोनों कवियों की मात्र उपर्युक्त रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। वे भी ८०-९० वर्ष पुराने प्रकाशन में छिपी पड़ी हैं। किंतु इन रचनाओं द्वारा ही हम डुग्गर धरती की संस्कृत परंपरा की एक श्रृंखला तैयार कर सकते हैं। इस लिये इतिहास के लिये ये रचनाएं और इनके रचयिता एक विशेष कड़ी हैं।

ब्रजराज के पिता रणजीत देव एक कुशल शासक सुप्रबन्धक तथा विद्याव्यसनी थे। उनके शासनचातुर्य के कारण जम्मू प्रदेश धनधान्य संपन्न होकर उन्नति की चोटी पर पहुंचा तथा इसकी सीमा लाहौर के शहादरे के साथ जा लगी।

राजा ब्रजराज ने भी अपने राज्य काल में धरती का गौरव पूर्ववत् कायम रखा। किन्तु पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के पिता महानसिंह ने उसी समय

जम्मू पर आक्रमण कर दिया। ब्रजराज देव ने स्वल्प साधनों के रहते हुए भी बहादुरी से सामना किया और अंततक लड़कर सं० १८४३ में युद्धक्षेत्र में वीरगति प्राप्त की। इस समय जम्मू के आकाश पर लूटपाट और अग्निदाह का तूफान उमड़ा हुआ था। जम्मू पूर्ण रूप से उजड़ चुका था। ऐसी राजनीतिक उथल पुथल की परिस्थिति की लपेट में आकर ब्रजराज देव द्वारा प्रज्वलित संस्कृत साहित्य का दीपक कुछ काल के लिये धुंधला अवश्य पड़ गया, जो महाराजा गुलाबसिंह के युग तक धीमा प्रकाश देकर पुन: चमकने लगा।

ब्रजराजदेव का दसवर्षीय बालक युद्ध की लपेट में आ चुका था। वे निस्संतान होकर स्वर्ग सिधारे थे अत: जसरोटे के राजा जैतसिंह, जो दलेलसिंह का लड़का था अर्थात् ब्रजराजदेव का भतीजा था, को बुलाकर जम्मू की गद्दी पर बैठाया गया और सूरजसिंह के लड़के मियां मोटासिंह को राज्य-प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इस दौरान संस्कृत साहित्य का दीपक किसी प्रकार जलता रहा।

सूरतसिंह के चार लड़कों में एक जोरावरसिंह था जिसके पुत्र किशोरसिंह के यहां महाप्रतापी गुलाबसिंह का जन्म हुआ। सूरतसिंह ध्रुवदेव का पुत्र तथा रणजीतदेव का भाई था।

जैतसिंह भी संस्कृत के बड़े प्रेमी थे, किन्तु इनका जीवन भी युद्ध में ही व्यतीत हुआ। कारण लाहौर से बार बार आक्रमण हो रहे थे जिनका सामना ब्रजराजदेव ने अंतिम क्षणों तक वीरतापूर्वक किया। युद्ध की यही विरासत जैतसिंह को भी मिली। किन्तु स्वाभिमानी डोगरा शासक अपने रक्त की अंतिम बूंद रहते तक लड़ता रहता है। जैतसिंह ने भी इस व्रत का पालन किया। युद्ध की इस भूमिका में संस्कृत साहित्य के उत्थान को बहुत चोट पहुंची। जैतसिंह के समय संस्कृत के एक ऐसे चमत्कारी विद्वान पैदा हुए जिन्होंने अपने प्रकांड पांडित्य से न केवल डुग्गर को बल्कि काशी को भी चमत्कृत कर दिया। ये थे पं० काका राम जी शास्त्री जो वेदवेदांग, दर्शन, पुराण, व्याकरण आदि विषयों के पूर्ण-पंडित होकर काशी गए। वहां के प्रसिद्ध विद्वान, शेखर के टीकाकार भैरवमिश्र गौड़पाद जैसे विद्वानों से शास्त्रार्थ करके उन्हें चमत्कृत किया। पं० काकाराम शास्त्री ने इतना विशाल पांडित्य इसी डुग्गर धरती पर प्राप्त किया था। इससे स्पष्ट है कि उस युग में यहां का संस्कृत पठनपाठन का स्तर काशी के स्तर से कम न होगा, और यह स्तर राजाश्रय से पोषण पाकर ही इतनी उच्चता पर पहुंचा। पं० काकाराम शास्त्री को कांशी की पंडित मंडली में उच्च स्थान प्राप्त हुआ। अंत में ८० वर्षों की अवस्था में उन्होंने वहां के मणिकर्णिका घाट पर अपना

शरीर छोड़ा। इनकी शिष्य परंपरा आज भी वहां चलती आ रही है। इनका समय संवत् १८२३ से १९०७ तक के लगभग पड़ता है। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।

जम्मू प्रदेश परंपरा से संस्कृत का गढ़ रहा है। इस प्रदेश में संस्कृत के अनेक ग्रंथ लिखे गए थे। किन्तु कोई इतिहास न होने के कारण आज हमें इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। केवल एक ही ऐसा पहलू है, जिस द्वारा प्राग् गुलाबसिंह युग के संस्कृत क्षेत्र की समृद्धि के सम्बन्ध में हमें कुछ उन्मेष मिलते हैं। ये स्रोत हैं—स्थानीय संस्कृत हस्तलेखों का विशाल भंडार जिसे महाराजा रणवीर सिंह ने उपलब्ध कर रघुनाथ मंदिर के पुस्तकालय में सुरक्षित रखा था। किसी स्थान पर संस्कृत लेखों की इतनी बड़ी राशी का मिलना ही उस स्थान की परंपरा की समृद्धि का सूचक है। महाराज रणवीरसिंह का युग संस्कृत साहित्य के लिये इस राज्य में स्वर्णयुग था। इसी युग में महाराज के प्रयत्नों से बहुत सा भाग प्रकाशित भी हुआ। बड़े २ विद्वान जम्मू आकर राजकीय छत्रछाया में रहकर सरस्वती की उपासना करने लगे। प्राचीन हस्त-लेखों का संग्रह भी हुआ। इन संगृहीत हस्तलेखों के निर्माण में कितनी शताब्दियां बीती होंगी और भिन २ राजाओं ने इस कार्य में कितना प्रोत्साहन दिया होगा, यह बात स्वयं समझने की है दूसरा तथ्य यह भी है कि महाराज रणवीर सिंह का संस्कृत के प्रति अगाध अनुराग कुछ तो उनकी व्यक्तिगत विशेषता थी और कुछ उन्हें अपने पूर्वजों को विरासत के रूप में यह अनुराग मिला था जो उनकी बाल्यावस्था में ही उनके साथ जुड़ गया।

डुग्गर प्रदेश का हस्तलेख युग डुग्गर राजवंशावलि के साथ साथ चलता आया है। महाराज गुलाबसिंह के युग तक यह निर्माण काल ढेरों ग्रंथ तैयार कर चुका था। इस लिखित साहित्य के विषय निम्नलिखित हैं—

वेद, सूत्र, उपनिषद्, वेदांग, व्याकरण, कोष, छंद, संगीत, काव्य, नाटक, आख्यायिका, धर्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, चिकित्सा, जैन दर्शन आदि। आज इन विषयों के हजारों हस्तलेख रघुनाथ पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनमें कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जो संस्कृत साहित्य की अमूल्य अप्रकाशित संपत्ति हैं। उनमें से कुछ एक के नाम यहां गिना देना आवश्यक होगा।

रघुनाथगुणोदय महाकाव्य, धर्मशास्त्रसंग्रह, नीतिकल्पलता, पूजारहस्य, वीर रत्नशेखर शिखा, संक्षिप्ताह्निकपद्धति, स्त्रीधर्मनिर्णय, ब्रह्मसूत्रवृत्तिसार, एकाक्षर

निघंटु, कल्पसागर, रणवीरसिंह सदाचाररत्नाकर, रणवीर संगीतमहोदधि, रणवीर प्रायश्चित्तप्रकाश, रणवीरज्योतिर्महानिबन्ध, रणवीरवृत्तरत्नाकर, रणवीर चिकित्साप्रकाश।

उपर्युक्त हस्तलेखों के अंतिम ग्रंथ जो रणवीर नामस्मरण से युक्त हैं उन्हें रणवीरसिंह ने विद्वन्मंडली द्वारा रचाया था। इनके प्रकाशन की व्यवस्था उस समय के विद्याविलास प्रेस में किसी कारणवश नहीं हो पाई होगी। किन्तु कुछ प्रकाशित भी हो गए थे। शेष हस्तलेख रणवीर सिंह के युग से अतीव प्राचीन हैं। इन संगृहीत हस्तलेखों का पूर्ण विवरण श्री स्टाईन के कैटेलाग में भी अब अप्राप्य है। रघुनाथ पुस्तकालय में इसकी एक प्रति है जो जीर्ण शीर्ण दिशा में मिलती है। धमार्थ ट्रस्ट को चाहिए कि वह इसे पुन:मुद्रित करे। यह एक अपूर्व कैटेलाग है, जो प्रा० सं० हस्तलेखों का विवरण सहित पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में निर्देशक का कार्य करता है। ब्रजराजदेव का युग भी संस्कृत भाषा के लिये स्वर्णयुग था। दत्त कवि के एक श्लोक से विदित होता है कि महाराज को प्रसन्न करने के लिये संस्कृत के कवि अपना कविकौतुक दरबार में प्रदर्शित करके उनकी कृपा का प्रसाद पाने का प्रयत्न करते थे। इस प्रकार राजाश्रय से संस्कृत कविता भी पनप रही थी। श्लोक इस प्रकार है—

आर्जवादिवगुणैर्युक्ता सद्वृत्तिस्सपदक्रमा।
सतीव कवितेयं मे ब्रजराज मुदेऽस्तुवः।।

इसी समय लगभग १८१२ में बिलावर के पास सुकराल नामक गांव में देवी प्रकट हुई। उसके अस्थान की प्रतिष्ठा महाराज ब्रजराजदेव ने धूमधाम से की इसमें कवि गंगाराम एवं दत्तू तथा उस युग के प्रसिद्ध कर्म कांडी, तांत्रिक एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित श्री सूर्य नारायण जैसे उपस्थित थे। कुलपण्डित होने के नाते अचार्य सूर्य नारायण ने ही मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी। यह धार्मिक दृश्य भी उस युग की संस्कृतोन्नति का एक संकेत है। मूर्ति स्थापित होने के बाद ही कवि गंगाराम ने 'मामल्लाष्टक' की रचना संस्कृत छंदों में की, मामल्लदेवी का नाम सुकराल गांव में स्थापित होने के कारण सुकराला देवी पड़ गया, जो आजकल इसी नाम से प्रसिद्ध है।

संस्कृत भाषा के गढ़ मुख्य रूप में भारतीय तीर्थ रहे हैं। इन्हीं स्त्रोतों से निकलकर संस्कृत सरिता की धाराएँ समग्र देश में बहती रहीं। प्रयाग, अयोध्या, काशी, मथुरा, हरिद्वार, द्वारका आदि तीर्थ आदि काल से संस्कृत के केन्द्र रहे हैं और आज भी हैं। प्राय: संस्कृत विद्वानों तथा मनीषियों को स्वभावत: तीर्थ-

स्थान का निवास अभीष्ट रहता था। इन तीर्थों की शृंखला में महाभारत के अनुसार जम्मू प्रदेश भी आ जाता है। इसी कारण यह भूमि विद्वानों और ऋषि मुनियों का निवास स्थान रही है। महाभारत के वन पर्व (अध्याय ४०, श्लोक ८२) के एक श्लोक से यह स्पष्ट है—

जम्बूमार्गं समाविश्य देवर्षि पितृ सेवितम्।

अश्वमेधमवाप्नोति सर्वकाम समन्वितः॥

जम्मू मार्ग में प्रवेश करने से मनुष्य अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता हुआ सब कामनाएं प्राप्त करता है। यह जंबूमार्ग देवर्षि और पितरों में सेवित है। इस उद्धरण में जम्बूमार्ग देवर्षि और पितरों का निवासस्थान होने के कारण संस्कृत भाषा का केन्द्र स्वयं सिद्ध है। जम्बूमार्ग का निर्देश निरुक्त के प्रसिद्ध प्राचीन टीकाकार आचार्य दुर्गाचार्य ने निरुक्त टीका की अध्यायसमाप्ति पर लिखा है—इति श्री जम्बूमार्गाश्रम वासिनो भगवद्दुर्गाचार्यस्य कृतौऋज्वर्थायां निरुक्त वृत्तौ। आचार्य दुर्गाचार्य जो लगभग पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुए थे, अपना परिचय जम्बूमार्ग निवासी के रूप में देते हैं। उस समय अर्थात् संवत् १४५० के आस पास महाराज मालदेव जम्मू की गद्दी पर विराजमान थे। राजा मालदेव की वीरता की कहानियां प्रसिद्ध हैं। ये बड़े बड़े वृक्षों को हाथों हाथ उखाड़ फेंकते थे और बड़ी बड़ी चट्टानों को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। दुर्गाचार्य इन्हीं के समकालीन या कुछ आगे पीछे रहे होंगे। दुर्गाचार्य का धुरंधर पांडित्य और उसका अखिल भारतीय स्तर पर कीर्तिकलाप जम्बूमार्ग की ही देन समझनी चाहिए। मालदेव या उसके पुत्र हमीर किसी के भी राज्य-काल में दुर्गाचार्य रहे हों किंतु उन्हें राज आश्रय या राजसम्मान अवश्य मिला होगा, इस लिए प्राचीन संस्कृत पांडित्य सर्वदा राज दरबारों के पोषण में रह कर ही बिकासित होता रहा। यहां की राज परम्परा ने दुर्गाचार्य जैसे अन्य संस्कृत महारथी भी उत्पन्न किए होंगे। किन्तु दुर्भाग्यवश आज उनके सम्बन्ध में हमें कुछ संकेत प्राप्त नहीं हैं।

ब्रजराजदेव के युग को पार कर जब हम आगे चलते हैं तो राजा जैत सिंह का युग आता है। यह स्वल्पकालीन युग संस्कृत-प्रचार की दृष्टि से विशेष नहीं मालूम पड़ता क्योंकि इस युग में मियां डीडो का आतंक मचा हुआ था और उसे दबाने के लिए जम्मू सिंहासन परेशान था। महाराज गुलाब सिंह, जो उस समय महाराज रणजीत सिंह के दरबार में उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित थे, ने जम्मू आकर इस परेशानी को मिटाया और संस्कृतप्रचार के लिये मार्ग प्रशस्त

किया। श्री गुलाब सिंह जी कैसे महाराज बने, उन्होंने कैसे जम्मू कश्मीर, लद्दाख, तिब्बत आदि के समन्वय से एक वृहत राज्य की स्थापना की यह एक पृथक् ऐतिहासिक विषय है। सं० १६९५ (ई० १८०९) में महान सिंह ने जम्मू पर पहली चढ़ाई की, जम्मू के राजा जैत सिंह ने गुमट ढक्की पर सेना का संगठन किया और द्वार कुछ देर के लिए बन्द कर दिया। चौदह वर्ष के बालक ने द्वार खुलवा कर सेना की टुकड़ी साथ लेकर विशाल शत्रु समूह को वीरता के साथ तवी के जंगलों के उस पार खदेड़ दिया। वीरता के इस अद्भुत चमत्कार को सुनकर महाराज रणजीत सिंह ने गुलाब सिंह को लाहौर दरबार में बुला लिया। तभी से गुलाब सिंह ने अपने शौर्य और राजनीतिज्ञता के बल पर उन्नति प्रारम्भ की। निरन्तर युद्धों में विजय पाकर गुलाब सिंह ने लाहौर दरबार को अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। सन् १८२२ ई० में जम्मू का राज्य मिल गया, किंतु पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं, जम्मूपति बनकर भी उसे रणजीत सिंह के आज्ञानुसार युद्धों में जाना पड़ता था, इधर जम्मू का राज्य पाकर गुलाब सिंह ने इस प्रांत के छोटे मोटे राज्य जीतकर राज्य की सीमा बनिहाल पर्वत तक पहुँचा दी। तत्पश्चात् लद्दाख और कुछ भाग तिब्बत का जीत लिया। रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् कुछ वर्षों के अन्नतर जब पंजाब प्रांत अंग्रेजों के हाथ पड़ गया तो सन् १८४६ में गुलाब सिंह ने अंग्रेजों को ७५ लाख रु० देकर कश्मीर भी ले लिया। इस प्रकार जम्मू, काश्मीर, लद्दाख और तिब्बत का समन्वय करते हुए गुलाब सिंह ने वृहत राज्य की स्थापना की। अंग्रेजों ने उसे स्वतन्त्र राजा सन् १८४६ में घोषित कर दिया था। इन बारह वर्षों के राज्य काल में अर्थात् सन् १८३६ से १८५८ तक गुलाब सिंह का जीवन युद्धों में ही बीतने के कारण उसे संस्कृत की उन्नति के लिए समय नहीं मिला। किंतु महाराज रणवीर सिंह के साहित्यिक स्वर्णयुग की मूल पृष्ठभूमि के प्रतिष्ठापक गुलाब सिंह ही थे इसमें सन्देह नहीं।

दृढ़ धार्मिक होने के नाते उन्होंने उत्तरवाहिनी में गदाधर का विशाल मन्दिर सं० १८९८ में बनवाया, जिसके साथ एक संस्कृत पाठशाला, गौशाला तथा सदावर्त की भी स्थापना की। संस्कृत की दिशा में पुनः नए सिरे से यह आयोजन अपने ढंग का प्रथम था। इसी प्रकार उत्तरवाहिनी के आस पास अविमुक्तेश्वर, रणवीरेश्वर आदि कई मन्दिरों का निर्माण किया गया। गदाधर संस्कृत पाठशाला में सांग, वेद व्याकरण, ज्योतिष तथा षटदर्शनों का अध्यापन

कार्य होता था। इसके लिए भारत भर के चुने हुए विद्वान बुलाए गए। डोगरा भूमि के गण्यमान्य विद्वानों को भी इस संस्था में नियुक्त किया गया।

पांच सौ छात्रों के लिए भोजन, अध्ययन तथा आवास का नि:शुल्क प्रबन्ध किया गया। महाराज गुलाब सिंह के इस प्रतिष्ठान ने उत्तरवाहिनी को संस्कृत भाषा का केन्द्र बना दिया। इस आयोजन के फलस्वरूप संस्कृत भाषा का देश भर में जिस गति से प्रचार हुआ उसका अनुमान स्वयं किया जा सकता है। इसी प्रकार गुलाब सिंह ने जम्मू के प्रसिद्ध रघुनाथ मन्दिर की निर्माणशिला लगभग सन् १८५५ में रखी थी। उनके बाद बृहत संस्कृत विद्यालय, छात्रावास, छात्रों के लिए भोजनव्यवस्था, सदावर्त आदि की योजना भी साथ थी जिसे रणवीर सिंह ने अपने राज्यकाल में परिपूर्ण किया।

महाराज रणवीर सिंह

राज्य में संस्कृत का स्वर्णकाल स्थापित करने वाले महाराज रणवीर सिंह का जन्म सन् १८२९ में जम्मू के रामगढ़ स्थान पर हुआ था। महाराज गुलाब सिंह के छोटे भाई सुचेतसिंह ने इन्हें गोद लिया था। इसी कारण इनका बचपन उन्हीं की जागीर में बीता। गुलाबसिंह के महल में विद्वत्ता और धार्मिकता दोनो को प्रश्रय मिला था। इसी कारण दरबारी विद्वानों का प्रभाव तथा संस्कार इनपर बचपन में ही पड़ा होगा। १३ वर्ष की उमर तक राजा सुचेत सिंह के पास रह कर अब रणवीर सिंह अपने पिता महाराज गुलाब सिंह के पास आ गए। महाराज रणवीर सिंह का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। सर रिचर्ड अपनी डायरी में लिखते हैं कि रणवीर के नक्श अति सुन्दर थे। विशाल मस्तक, सीधी नाक, छोटी स्याह तथा घुंघराली दाढ़ी, गोटेदार पगड़ी, माथे पर तिलक, गले में सुन्दर माला, सफेद पोशाक और छाती पर शासक का तमगा, यह था उनका स्वरूप।

गद्दी पर बैठने पर इन्हें अपने विरुद्ध एक बड़ी भारी साजिश का भी सामना करना पड़ा, जो बाद में कुचल दी गई। सर लाटेंसर, फ्रेडरिक, करी आदि अंग्रेज अधिकारियों के विचार रणवीर सिंह के प्रति बड़े श्रद्धापूर्ण रहे हैं। इन लोगों ने समय समय पर रणवीर सिंह के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त किया था।

महाराज गुलाब सिंह के घरेलू जीवन में संस्कृत पांडित्य और सनातन धार्मिकता को पूरा प्रश्रय मिला था। महलों में आस्तिकता, कर्मकांड और जप, तप, व्रत आदि में पूर्ण प्रतिष्ठा थी। अगर विज्ञान से जीवन को सभ्यता मिलती है तो धर्म से संस्कृति। संस्कृति का उद्गम धर्म होने के कारण धार्मिक लोग

संस्कृति प्रधान होते हैं। यह संस्कृति डोगरा शासकों की परम्परा रही है। डुग्डर जाति में वैदिक एवं पौराणिक धार्मिकता की देन अति प्राचीन है। तलवार और लेखनी का गठजोड़ इस जाति में परम्परा से पाया जाता है। इसी कारण रणबीर सिंह को महलों के इस धार्मिक वातावरण ने अपनी परम्परा प्रदान की। राजकीय विद्वानों से संस्कृत साहित्य के अनुराग का संस्कार मिला। जहां महाराज गुलाब सिंह युद्धों में उलझे हुए थे, वहां राजकुमार रणबीर सिंह अपना राजकुमारसुलभ ऐश्वर्य एवं कोमलता का जीवन महलों में बिता रहे थे। जीवन की इस एकांत निष्ठा तथा एकाग्रता में इन्होंने इन पवित्र संस्कारों को आत्मसात् कर लिया था।

सन् १८५७ में राज्य की बागडोर सँभालते ही महाराज रणवीर सिंह को संस्कृत प्रचार की धुन लगी। थोड़ें ही वर्षों में उन्होंने संस्कृत-क्षेत्र में अपने राज्य को दूसरी काशी बना दिया। इस स्थिति पर मुग्ध होकर उस युग के प्रसिद्ध कवि चण्डीदास ने इस श्लोक में अपने उद्‌गार प्रकट किए थे—

विद्वद्‌भिः सर्वदेशीयैः सर्वशास्त्रविशारदैः।
कृता काशी पुरी येन श्री जम्बू नगरीयमा॥

महाराज रणवीर सिंह ने संस्कृत के विकास तथा प्रचार के लिये मुख्य रूप से चार प्रकार निश्चित किए थे।

१. पुस्तकालयों में मुद्रित पुस्तकों के साथ प्राचीन हस्तलेखों के भण्डार स्थापित किए गए।

२. मन्दिरों की स्थापना जिनमें संस्कृत का पठनपाठन होता था और पाठशालाएं स्थापित की जाती थीं।

३. भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों से संस्कृत के प्रकांड पण्डितों को राज्य में बुलाकर सम्मानपूर्वक जीविका प्रदान की जाती थी।

४. संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन, जिसके अन्तर्गत स्थानीय विद्वन्मण्डली द्वारा रचे गए नए नए संस्कृत ग्रंथों का प्रकाशन होता था।

पाठशालाएँ—इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सन् १८९८ में रघुनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई और तभी श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की गई। इस प्रकार संस्कृत के प्रचारार्थ ५०० विद्यार्थियों के लिए निवास और भोजन की व्यवस्था भी की गई। इसी स्तर पर उत्तरवाहिनी संस्कृत विद्यालय का भी नया संगठन किया गया और वहां के छात्रों की संख्या भी ५०० रखी गई। इन दोनों विद्यालयों में वेद, वेदांग, ज्योतिष, व्याकरण, चिकित्सा, दर्शन

आदि विषयों के पृथक्-पृथक् विभागीय स्तर पर विद्वानों की नियुक्तियां की गईं। इसके अतिरिक्त राज्य भर में छोटी छोटी अन्य संस्कृत की पाठशालाएं भी स्थापित की गईं। उन सबके मुख्य केन्द्र उपर्युक्त दो महाविद्यालय ही थे। रणवीर सिंह की महारानी बन्द्रहाली ने भी सम्वत् १८४६ में पुराणी मण्डी मन्दिर का निमार्ण करवाकर वहां एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की जिसमें ५० विद्यार्थियों के निवास तथा भोजन की व्यवस्था की गई। यह पाठशाला तब से प्रारम्भ होकर सन् १९३७ तक चलती रही। इस पाठशाला से अनेक संस्कृत विद्वान् पैदा होकर राज्य भर में भागवत सप्ताह तथा ज्योतिष, कर्मकांड आदि की प्रौढ़ योग्यता द्वारा यश कमाने लगे। उनमें प्रसिद्ध पंडित हाकिमचन्द्र शास्त्री थे जिनकी श्रीमद्भागवत में अगाध गति थी। उनके श्रीमद्भागवत सप्ताह में इतना आकर्षण था कि श्रोता इनकी सुरीली कण्ठध्वनि और श्लोकों की मार्मिक व्याख्या सुनकर सब कुछ भूल जाते। अपने समय में इस क्षेत्र में इनकी बड़ी प्रसिद्धि रही। इसी प्रकार उपर्युक्त दो बड़े महाविद्यालयों से अन्य धुरंधर विद्वान् पैदा होकर देश विदेशों में इस डुग्गर देश की यशपताका फहराने लगे।

प्राचीन हस्तलेख—इस समय रघुनाथ पुस्तकालय में लगभग ४५०० प्राचीन हस्तलेख संगृहीत हैं, जो महाराज रणवीर सिंह ने बड़े परिश्रम से इकट्ठे कराए थे।। इसके लिए उन्होंने पं० आशा नन्द को काशी भेजा और १५००० रुपए खर्च कर सैकड़ों संस्कृत हस्तलेख वहां से प्राप्त किए। अपने राज्य में भी खोज की गई और सैकड़ों पांडुलिपियां यहां से भी उपलब्ध की गईं। इसी प्रकार विद्यानाथ पाठक (काशी), पं० व्यास (पटियाला), पं० रामकृष्ण (जम्मू), गोपाल राम (जम्मू) से भी पर्याप्त धन देकर संस्कृत हस्तलेख खरीदे गए। तत्पश्चात राजस्थान के एक राजा मंगल सिंह ने भी अपना हस्तलेख भंडार यहीं भेज दिया। इस प्रकार मिलाजुला कर ४५०० सौ के लगभग पांडुलिपियों का यह संग्रह रघुनाथ पुस्तकालय में रखा गया। यह संग्रहकार्य सन् १८६० के लगभग प्रारम्भ होकर १८८३ तक चला। १८८५ में महाराज रणवीरसिंह की मृत्यु के बाद महाराज प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। इन के राज्यकाल में ही मि० स्टाईन को जम्मू बुलाया गया। उन्होंने सन् १८८९ से १८९३ तक इन हस्तलेखों की एक वृहद् सूची तैयार की। इसी समय पंडितराज काक, बलभद्र काक, साहिब राम आदि कश्मीरी विद्वानों ने कश्मीर घाटी से भी बहुत से लेख प्राप्त कर के इस पुस्तकालय को दिए। डा० स्टाइन उस समय लाहौर विश्वविद्यालय के ओरियंटल

कालेज के प्रिंसिपल थे । इस कार्य के लिये उन्हें गोविंद कौल तथा सहज भट्ट नामक दो सहायक दिए गए तथा छः प्रतिलिपिकार । इस संग्रह में बड़े अमूल्य संस्कृत हस्तलेख हैं । इनमें से एक प्राचीन हस्तलेख डा० ब्लूम फील्ड के हाथ पड़ गया था जिस की फोटो कापी ले कर उन्होंने उसे इंग्लैंड में जाकर छपवाया ।

संस्कृत पुस्तक प्रकाशन—इस कार्य के अंतर्गत महाराज रणवीरसिंह ने दूर दूर के विद्वानों को बुलवा कर अपनी सभा में रखा तथा संस्कृत के भिन्न-भिन्न विषयों पर उन से ग्रंथ लिखवाए । विस्तारभय से निर्मित तथा प्रकाशित ग्रन्थ की सूची मात्र नीचे दी जाती है—

१. अथर्ववेद संहिता—पैल्लाद शाखीया		हस्तलेख
२. अमरकोष नाममाला (हिंदी भाषा सहित)		,,
३. अमरकोषनाममाला—हिन्दी-लद्दाखी भाषानुवाद सहित		,,
४. एकाक्षर निघंटु		,,
५. कल्पसागर	निर्मित	,,
६. चित्तप्रदीप	संपादित	,,
७. जातक गणित स्कंध संग्रह	संपादित	,,
८. जातक फल स्कंध	,,	,,
९. जातक संग्रह	रचित	,,
१०. तर्कसंग्रह व्याख्या	,,	,,
११. दशभाषोदय कोष		,,
१२. ताजिक संहिता	संपादित	,,
१३. दुर्गाक्रिमण रीतिः		,,
१४. धनंजयविजय—डोगरी भाषानुवाद		,,
१५. धर्मशास्त्रसंग्रह	संपादित	,,
१६. नीतिकल्पलता (साहिराम)	रचित	,,
१७. पंचसायकविवरण ,,	,,	,,
१८. पूजा रहस्य सटीक	,,	,,
१९. श्रीमद्भागवत गीता टीकाविंशतिः	संपादित	,,
२०. भावप्रकाश टीका	संपादित	,,

२१.	भाषाकोष	संपादित	हस्तलेख
२२.	मार्कंडेयपुराणाख्यान	,,	,,
२३.	रघुनाथ गुणोदय	रचित	,,
२४.	रणवीर संगीतमहोदधि:	,,	,,
२६.	विषहर तन्त्र (सं० १८०१) गनेशशास्त्री		,,
२७.	वीररत्नशेखरशिखा—चिकित्सा ग्रंथ	अनुवाद	,,
२८.	वीर वैद्यरत्नहार टीका (साहिबराम)—चिकित्साग्रंथ		,,
२९.	संक्षिप्ताह्निक पद्धति:	रचित	,,
३०.	स्त्रीधर्म निर्णय	,,	,,
३१.	फौज के लड़ाने की किताब	,,	,,

उपर्युक्त कुछ प्रधान हस्तलेखों का प्रदर्शन हो चुका है ; इस के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रधान ग्रंथ ऐसे हैं जो महाराज रणवीरसिंह ने विद्वानों से बनवाकर तथा संपादित करवाकर विद्याविलास प्रेस से छपवाए थे। उनके मुख्य-मुख्य नाम ये हैं—

१—गीतापंचरत्न, २—धातुरूपावली, ३—नासिकेतोपाख्यानम्, ४—मंत्ररामायणम्, ५—रणवीरचिकित्साप्रकाश, ६—रणवीर चिकित्सासुधार, ७—रणवीरज्योतिर्महानिबंध, ८—रणवीरप्रायश्चितप्रकाश, ९—वर्णमाला, १०—सेनाशिक्षा, ११—रणवीरदंडविधान, १२—रणवीरव्रतरत्नाकर, १३—रणवीर भक्ति रत्नाकर १४—कुछ धर्मशास्त्र संबंधी संपादित पुस्तकें। रणवीरसिंह ने मुँह मांगा वेतन देकर बड़े बड़े योग्य विद्वानों को राज्य में लाकर रखा था। डोगरे संस्कृत विद्वान् भी चुन कर इस राजकीय पंडितमंडली में रखे गए थे, उन में से कुछ प्रसिद्ध विद्वानों के नाम ये हैं—

१—पं० गोपालराम, २—नव्यचंडीदास, ३—पं० दीनानाथ, ` —पं० विश्वरूप ५—पं० निधिपति, ६—पं० नीलकंठ, ७—पं० गणेश दैवज्ञ, ८—पं० महेश ९—विश्वेश्वर दैवज्ञ, १०—पं० सर्वेश्वर, ११—काशीनाथ शास्त्री, १२—पं० गोकुलचन्द्र, १३—पं० गंगाधर, १४—गोविंदाचारी।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाराज रणवीर सिंह का युग संस्कृत क्षेत्र में सब युगों से महान है। सन् १८८५ में रणवीर सिंह की मृत्यु के पश्चात् उन के बड़े सुपुत्र श्री प्रताप सिंह के शासन काल में जम्मू कश्मीर अनुसंधान विभाग की ओर से लगभग १०० हस्तलेखों का प्रकाशन हुआ जिनका

विवरण विस्तारभय से यहां नहीं दिया जा रहा है। इस के अतिरिक्त महाराज प्रतापसिंह ने पूजापाठ, कर्मकांड और यज्ञ, तप, दान तथा संस्कृत विद्वानों के सम्मान में काफी योगदान दिया। इन के युग में विद्वानों की प्राचीन परंपरा तथा संस्कृत के उत्कट पांडित्य का बड़ा पोषण होता रहा और संस्कृत का उपयोग साधारण जनता तक फैला। ६० वर्ष पुराना एक विज्ञापन पत्र मेरे हाथ लगा था, जिनमें श्रीमद्भागवत् सप्ताह के होने की सूचना आम जनता के नाम प्रसारित की गई थी। विज्ञापन पत्र संस्कृत में छपा था जिसका पहला पद्य इस प्रकार है **भविष्यति कथा चात्र आगंतव्यम् महाशयैः** तथा इस के नीचे गद्य में लिखा था **एषा सूचना ग्रामे ग्रामे नगरे नगरे परिप्रेषणीया**। इस युग में संस्कृत विद्वत्ता का वह स्तर जीवित ही नहीं रहा बल्कि उस में और नई उपलब्धियां जुड़ीं।

सन् १९२५ में महाराज प्रताप सिंह का देहावसान होने पर महाराज हरि सिंह जम्मू कश्मीर की राजगद्दी पर बैठे। इन के युग में भी रणवीर सिंह संबंधी संस्कृत परम्परा कायम रही। किन्तु नए युग के अंग्रेजी प्रसार ने इस परम्परा को हड़पना प्रारम्भ कर दिया। यह ग्रासीकरण दिन दिन बढ़ता ही गया इस के साथ ही राज्य की प्राचीन संस्कृत परम्परा भी अस्त होती गई, किन्तु महाराज हरी सिंह ने महाराज रणवीर सिंह द्वारा स्थापित संस्कृत प्रतिष्ठान, सदावर्त, और मठों का पोषण पूर्ववत् चालू रखा। इस युग में यह भी कम न था। इन्होंने संस्कृत क्षेत्र में अपनी एक नई उपलब्धि यह भी जोड़ दी कि संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए शास्त्रियों को बड़ी बड़ी छात्र वृत्तियों पर काशी भेजा जाने लगा।

सन् १९४७ के अनन्तर स्वतन्त्रताप्राप्ति के युग में आकर महाराज हरिसिंह के सुपुत्र डा० महाराज कर्ण सिंह ने भी संस्कृत प्रेम की अपनी परम्परा की विरासत को साथ रखते हुए अपने पूर्वजों की इस थाती को अभी तक सुरक्षित रखा है यद्यपि आज के नवीन वैज्ञानिक युग में अंग्रेजी के अंधे अनुराग ने जनता की भावना को संस्कृत की दिशा की ओर से मोड़ने के प्रयत्न किए हैं। यह एक युगचक्र है जो परिवर्तन की धुरी पर घूमता हुआ आया है। अब इसे अपना समय लेना ही है।

महाराजा डा० कर्ण सिंह के संस्कृत प्रेम के कारण ही उन प्राचीन हस्तलेखों को नया संरक्षण मिला है। एक रघुनाथ संस्कृत अनुसंधान विभाग की

अलग स्थापना करते हुए, इन्होंने संस्कृत शोध कार्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया है। इन्हीं की प्रेरणा का फल है कि जम्म-कश्मीर में अब भी उस प्राचीन संस्कृत-परम्परा का लेखन-काय और पठन-पाठन प्रचलित है। श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में संस्कृत पठन-पाठन का प्रतिष्ठान भी चल रहा है। तथा लेखन कार्य की दिशा में श्री शुकदेव शास्त्री ने लगभग संस्कृत के चार काव्य भी लिखकर प्रकाशित किए हैं। अभी उनकी साधना चल रही है। संस्कृत गद्य की दिशा में संस्कृत पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री रामकृष्ण शास्त्री ने भी इन दिनों कादंबरी कथा सार; लिखकर इस परम्परा को अग्रसर किया। इसी प्रकार केदारमाथ शास्त्री ने भी ''तौषी शतकम'' लिखकर संस्कृत की नवीन परम्परा को और योग दिया है।



नंगे

(एकांकी नाटक)

मोती लाल क्यमू

पात्र –

रतिरमण
चेतना
इंस्पेक्टर
डाक्टर
कैदी
मुन्शी
और
कुछ सिपाही

पर्दा उठते ही मुन्शी रजिस्टर पर कुछ लिखते दिखाई देता है। फिर पढ़ता है। पार्श्व में घड़ी ११ बजाती है। इंस्पेक्टर अन्दर जाता है। हवालदार मुन्शी खड़ा हो जाता है। और उसके बैठने के लिये कुर्सी छोड़ देता है। दो सिपाही रतिरमण को अन्दर लाते हैं। रतिरमण अर्ध नग्न है। उसने कमर पर तौलिया लपेटा है।

इंस्पेक्टर : यहां लाइये ? (स्वयं बैठ जाता है। रतिरमण उसके सामने खड़ा है।) बैठ जाइये !

(रति-खामोश खड़ा है। वह कमरे के इर्द-गिर्द देखता है। पहली बार इस कमरे में पधारने के बावजूद उसे लगता है जैसे इस कमरे को बहुत बार देखा है। इंस्पेक्टर भी उसके मुख की ओर देखकर कमरे में नजरें घुमाता है। जैसे कि सचमुच कमरे में कोई देखने योग्य वस्तु ढूंढ रहा हो।)

मैं आप से कह रहा हूं। बैठ जाइये ?

(रति- दूसरी कुर्सी पर बैठ जाता है। इंस्पेक्टर जेब से कलम और हैण्ड-बैग से कागजात निकाल कर लिखने लगता है। रजिस्टर के पृष्ठ उलटता है।)

रति : इंस्पेक्टर साहब, आप ' ाब इन्क्वायरी फजूल जाएगी। आप मुझ पर विश्वास कीजिए। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं। मेरे पास कन्सेशन था। फार्म था। टिकट थी।

इंस्पेक्टर : आप अपना नाम बता दीजिए ?

रति : रतिरमण।

इंस्पेक्टर : (लिखकर) जात ?

रति : जी जाति ? ओ ! मैं भारतीय नागरिक हूं ।

इंस्पेक्टर : मैं आप की जात पूछ रहा हूं ।

रति : मैं कमजात नहीं । बदजात नहीं, असलजात हूं ।

इंस्पेक्टर : उफ ! आपका उपनाम, आई मीन सरनेम ?

रति : (धीमे स्वर में) मदन ।

इंस्पेक्टर : (लिखकर) मिस्टर बदन !

रति : जी आपने गलत लिखा । बदन नहीं, मदन ।

इंस्पेक्टर : ओ आई सी । मदन । मिस्टर रतिरमण मदन ।

रति : दुरुस्त है । मेरे फार्म पर यही नाम था । प्रमाणपत्रों पर यही नाम है ।

इंस्पेक्टर : कहां के रहने वाले हैं आप ?

रति : (चुप रहता है)

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं पूछ रहा हूं—आप कहां के रहने वाले हैं ?

रति : (कवि की भांति) हिमालय के प्रांगण में रहता हूं ।
(इंस्पेक्टर उसे घूर कर देखता है)
जी, आप घूर कर क्या देख रहे हैं । मेरे मुख पर मेरी रिहाइश का नाम नहीं लिखा है । सच ही तो कह रहा हूं ! हिमालय एक विशाल पर्वत है और उसकी बाहें सागर पर्यंत फैली हैं । मैं उसकी बाहों में रहता हूं ।

इंस्पेक्टर : कहां से आ रहे हैं आप ?

रति : विश्वविद्यालय से । दो वर्ष का कोर्स समाप्त करके आ रहा था तो यह वाक़या हुआ । आप विश्वास क्यों नहीं करते ?

इंस्पेक्टर : तो आप पढ़े लिखे भी हैं ?

रति : जी अंग्रेजी पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं । हिन्दी पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं । उर्दू पढ़ सकता हूं, लिख सकता हूं । संस्कृत...

इंस्पेक्टर : बस बस । आपकी तालीम ?

रति : शायद मैं आप से अधिक पढ़ा लिखा हूं !

इंस्पेक्टर : क्या मतलब ?

रति : जी, मतलब यह कि हो सकता है कि मैं आप से ज्यादा पढ़ा लिखा हूं ।

इंस्पेक्टर : मैंने १९५८ में इंटर पास किया, एक साल तक पंजाब में पुलिस ट्रेनिंग की और चार साल से यहां पर सब इंस्पेक्टर हूं।

रति : (मुस्करा कर) ठीक है। (उसकी नकल करते हुए) मैंने १९५३ में बी. ए. पास किया और आज तक बी. ए. का असली प्रमाणपत्र विश्वविद्यालय से नहीं मांगा।

इंस्पेक्टर : हुम। क्यों नहीं मांगा ?

रति : अभी तक उसकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ी।

इंस्पेक्टर : हु...मु। काम की बात करो। आप ने बगैर टिकट सफर क्यों किया ?

रति : आप यह प्रश्न बार-बार क्यों पूछते हैं, आप कैसे कहते हैं कि मैंने बगैर टिकिट सफर किया। आप उस टिकिट क्लैक्टर पर विश्वास करते हैं, क्योंकि उसने सरकारी सफेद वरदी पहनी है और मेरे कहने पर आपको बिश्वास नहीं आ रहा है। क्यों ? क्योंकि मैं अर्धनग्न हूं। हूं न ? मेरे कपड़ों की चोरी हुई। बक्स चुराया गया। बिस्तर चुराया गया। टिकट चुराई गई। मेरा व्यक्तित्व चुराया गया। इंस्पेक्टर साहब, मुझे नंगा छोड़ा गया।

इंस्पेक्टर : चोरी के इलजाम में जो भी पकड़ा जाता है अपने को निरपराध प्रमाणित करने के लिए बहाना बनाता है।

रति : मैं बहाना नहीं बना रहा हूं। मैं एक शिकायत करने आया हूं। आप मेरी मदद कीजिये। मुझे मेरी सर्टिफिकेट्स वापस दिलाइए। मेरी मदद कीजिये जो कुछ मेरे पास था उसकी चोरी हो गई... मेरा यकीन है कि चोर इसी स्टेशन पर उतरा होगा। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस दिला दीजिये। उसके बगैर में अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं। आप विश्वास क्यों नहीं करते ?

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मुझे अपनी रिपोर्ट मुकम्मल करने में दिक्कत आ रही है। उचित यही रहेगा कि आप इस झूठ का निर्माण न करें।

रति : आप को यकीन है कि मैं झूठ बोल रहा हूं।

इंस्पेक्टर : आप के पास कोई मुकम्मल सबूत नहीं है। कोई गवाह नहीं है। आप एक अजीब कहानी रच रहे हैं।

रति : गवाह ! प्रमाण ! इंस्पेक्टर यही एक बड़ा दुर्भाग्य है । उस डिब्बे में मेरे और उस लड़की के सिवा कोई नहीं था । मेरा अनुमान है कि वह लड़की इसी स्टेशन पर उतरी है । हो सकता है कि उसने चोर को मेरा सामान चुराते देखा हो । क्या आप उस का पता लगा सकते हैं ?

इंस्पेक्टर : बिना नाम, पता और किसी शक्लोसूरत के कैसे जाना जा सकता है ?

रति : मेरे पास उससे नाम पूछने के लिए समय ही कहां था । ओह ! मेरा सब कुछ लूट लिया गया ! सब कुछ लूट लिया गया ! आपको यकीन क्यों नहीं आता । मुझ जैसा पढ़ा लिखा नौजवान आखिर क्यों कर बगैर टिकट सफर कर सकता है ?

इंस्पेक्टर : क्या आप गाड़ी में ऐसे नंगे ही घुसे थे ?

रति : इंस्पेक्टर, आप यह सवाल बार-बार क्यों पूछते हैं । मैंने कहा न कि मुझे नंगे ही सोने की आदत है । जब डिब्बे में कोई न था तो मैंने सारी बत्तियाँ बुझायीं और वर्थ पर सो गया । कुछ देर बाद जब मैं जागा तो शौच चला गया । वहां से बाहर आने के लिए दरवाजा खोला तो वह लड़की बिल्कुल सामने अपने बाल संवार रही थी । मुझे देखते ही उसने मुझे यह तौलिया दे दिया । मैंने दरवाजे से केवल सिर और बाजू बाहर निकाल कर तौलिया ले लिया । दरवाजा बन्द किया । जब मैं अपनी नग्नता छुपाकर बाहर आया तो गाड़ी उस स्टेशन पर रुक चुकी थी । मैं अपनी जगह पर गया तो देखा मेरा सब सामान गुम था । मैंने सारे डिब्बे की तलाशी ली । इधर ढूंढा उधर ढूंढा पर कहीं कुछ भी नजर नहीं आया ।... मेरा दिल धड़कने लगा । मैं घबरा गया । मेरी सांस तेज चलने लगी । नहीं । मेरा दम घुटने लगा । बड़ी जुर्रत से मैं बाहर आया । कुलियों से पूछा । सारे प्लेटफार्म के चक्कर काटने लगा ; गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे में घुसा । लोग मुझे आश्चर्य से देख रहे थे । और अंत में उस टिकट क्लैक्टर से पूछा तो उसने टिकट मांगा । उसे मेरी बातों पर यकीन नहीं हुआ । इंस्पेक्टर साहब, क्या मैं सचमुच शक्ल से चोर लगता हूं ? क्या मेरे मुंह पर गंवारपन झलकता है ? क्या मैं फूहड़ लगता हूं ?

इंस्पेक्टर : क्या आप ने उस लड़की को पहले भी कभी देखा है ?

रति : नहीं। उसी समय पहली बार देखा। पर गौर से देखने का अवकाश कहां मिला ! उसने मुझे यह तौलिया देकर सहायता न की होती तो मैं अपनी नग्नता न छुपा सकने के कारण गाड़ी के नीचे दब कर प्राण दे देता।

इंस्पेक्टर : (हंसकर) तो क्या आप सचमुच आत्महत्या कर लेते ?

रति : इसके अतिरिक्त मैं कर भी क्या सकता था ? आप ही बताइए क्या आप सैंकड़ों लोगों के सामने नंगे फिर सकते हैं ?

इंस्पेक्टर : ओह, लीव इट।

रति : यह तो केवल एक अवस्था है जिसका मैं शिकार हुआ हूं। इंस्पेक्टर, आप बाथरूम में नहा रहे हों तो अचानक यदि मैं आपका दरवाजा खोल दूं तो आप क्या करेंगे ? (खामोश) आप जल्दी से दरवाजा बन्द करने की कोशिश करेंगे। और अगर दरवाजा बन्द होने से पहले ही मैं आपको तौलिया पेश करूं तो ? तो आप तौलिया लेकर, दरवाजा बन्द करके अपनी नग्नता को छुपाकर बाहर आयेंगे। गुस्सा होंगे। मुझ से मेरी मूर्खता का कारण पूछेंगे। परन्तु यदि मैं इतनी ही देर में गायब हो गया तो ?...तो ?

इंस्पेक्टर : अजब परिस्थिति होगी।

रति : तो बस, इंस्पेक्टर साहब, मैं ऐसी ही अजब परिस्थिति में पड़ गया। आप विश्वास कीजिए। मेरे कपड़े, मेरा बक्स, मेरे सर्टिफिकेट्स मुझे वापस दिलाइये। मेरी मदद कीजिए, मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस पाने में मदद कीजिए। देखिए, मैं इस दशा में कैसे रह सकता हूं। मैं बिलकुल अधूरा हूं। अधूरा हूं। अधूरा।

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं एक बात नहीं समझ सका !

रति : कहिये क्या ?

इंस्पेक्टर : गाड़ी में आपको नंगे सोने की क्या जरूरत पड़ी, जबकि आप एक...

रति : जबकि मैं एक पढ़ा-लिखा नौजवान हूँ। यही न ?

इंस्पेक्टर : ऐग्जेक्ट्लि दि सेम।

रति : इंस्पेक्टर साहब, बीस साल की उमर तक मुझे यह नहीं मालूम था कि नाइटस्यूट भी कोई चीज होती है। मुझे एहसास था कि सारी दुनिया रातभर नंगी सोती है। जब मैंने पहली बार नाइटस्यूट खरीदा तो मुझे उसमें अपना आप बेढंगा सा लगा। मुझे रात भर नींद नहीं आती थी। तब मैंने उसका इस्तेमाल करना ही छोड़ दिया। इंसपेक्टर, मैं इस लम्बे सफर में जागकर अपने आप को कष्ट देना नहीं चाहता था। इसलिए डिब्बे में किसी आदमजात को न देखकर मैं अपनी आदत के मुताबिक ही सो गया था। किन्तु यह वाकया अजब हुआ। मैं इससे बिल्कुल बेखबर था।

इंस्पेक्टर : ओ० के० मिस्टर मदन, मैंने आपके बयान को गौर से सुना लेकिन अभी मेरे सारे संशय दूर नहीं हुए।

रति : तो क्या आपको अभी भी मेरे कथन पर संशय है? क्या मैं झूठ बोल रहा हूं? क्या आपको यकीन...

इंस्पेक्टर : यकीन हो सकता है, परन्तु मुझे लगता है कि इस समय आप नरवस फील कर रहे हैं और रात भी काफी गुजर चुकी है। मैं आपके लिए कपड़े भेज देता हूं। आप पहन लीजिए। कल सवेरे बाकी कार्यवाही की जाएगी।

रति : लेकिन मुझे मेरे कपड़े दिलाइये। मेरी मदद कीजिए। मेरे सर्टिफिकेट्स मेरा बक्स, और बिस्तर वापस दिलाइये। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस दिलाइये। मैं बिल्कुल अधूरा हूं। अधूरा हूं।

इंस्पेक्टर : मैं पूरी कोशिश करूंगा। **(चला जाता है।)**

रति : (पीछा करता है) मैं बिल्कुल अधूरा हूं। अधूरा हूं।

मुन्शी : **(टेबल पर बिस्तर बिछा कर)** सिरफिरों का आलम है।

सिपाही : हां भाई, यह केवल अपनी ही बात दोहराता है। भला कोई सज्जन गाड़ी में नंगा होकर सफर कर सकता है?

मुन्शी : अरे भाई, हमारे गांव के मुखिया जी कहा करते थे—
तुलसी इस संसार में भांत-भांत के लोग ...

(दोनों हंसते हैं)

सिपाही : वह टिकट कलेक्टर एकदम भांप गया कि दाल में कुछ काला है।

भई लोग सफर का किराया नहीं देंगे तो अपने लोगों का निर्वाह कैसे होगा ?

मुन्शी : लोग जुर्म नहीं करेंगे तो हमारा काम बेकार हो जायेगा। अपना धंधा कैसे चलेगा ?

सिपाही : टिकट क्लैक्टर चाहता तो इसको छोड़ सकता था।

मुन्शी : कैसे छोड़ सकता था ? नंगे अधनंगे आदमी से आधी टिकट का आधा भी नहीं मिल सकता था। अरे, यही तो अच्छा मौका मिला आदमी को पुलिस के हवाले कर देने का, ऐसे ही मौकों पर धाक जमती है।

सिपाही : खाक जमती है। अपनी तो आज की सांझ मारी गई। वगैर लाइट के साइकल सवारों से कुछ न कुछ मिल ही जाता।

मुन्शी : अरे भाई, सब दिन होत न एक समाना।

सिपाही : हवलदारजी, दुनिया में कभी सब लोग साधू नहीं हो सकते। सभी पुण्य नहीं कमा सकते।

मुन्शी : अरे, छोड़ दो इस पाप-पुण्य को। सो जाने का विचार करो। सुबह फिर वही घुमक्कड़ी धंधा शुरू होगा।

(बिस्तर बिछा कर सोने की तैयारी करता है। सिपाही बिस्तर ले कर स्टेज पार करता है। रोशनियां धीरे-धीरे कम होतीं हैं।)

रति : **(आवाज)** मैं अधूरा हूं। अधूरा हूं। उ-उ-फ !

(पार्श्व में घड़ी का एक टन)

(रोशनियां। रतिरमण पुलिस-वरदी पहने स्टूल पर बैठा है। वरदी उसके शरीर पर बिलकुल नहीं फबती। वह बहुत विचलित है।) घुटन। कितनी घुटन। कमरे की घुटन। अंधेरे की घुटन। निस्तब्धता की घुटन। **(मुन्शी खरांटें लेता है)** नींद में सोये पड़े जानवरों के खरांटों की घुटन। उफ़, जी ऊब उठता है। इस बेढंगेपन से कब नजात मिलेगी ? **(खड़ा हो जाता है)** काश ! यहां पर कोई खिड़की होती ! छोटा सा झरोखा होता ! मैं तारों से आंखमिचौनी खेल सकता ! दो घूंट खुली हवा के पी सकता ! रात के चलते फिरते साये देख सकता !

(मुन्शी के समीप जाता है। उसका बेल्ट और रस्सी को उठाकर अपनी जगह पर आता है।)

मैं इन वस्त्रों में अपने को खो चुका हूं। निगल चुका हूं। मुझे यह बेढंगापन एक नजर भी नहीं भाता। ओह, मुझे कुछ हो गया है।

(बेल्ट अपनी कमर पर लगाता है तो वह पूरा नहीं आता है। खड़ा हो जाता है। बेल्ट का नम्बर देखकर)

नम्बर, पुलिस नम्बर एक छः सात आठ, रोल नम्बर, कमरा नम्बर, परीक्षा नम्बर, टिकट नम्बर, सीट नम्बर, गाड़ी नम्बर ! नम्बर नम्बर दस नम्बर, चार सौ बीस नम्बर, नम्बर।

(बेल्ट फेंक देता है अपना सिर पकड़ कर बैठता है)

ओह, मुझे कुछ हो गया है। (दिलपर) यहां। कुछ हो गया है। नहीं। (सिरपर) यहां कुछ हो गया है। मुझ से सहा नहीं जाता। मुझे दर्द हो रहा है। मेरा बदन कांप रहा है।

मुझे लगता है कि यह कमरा तंग होता जा रहा है। जैसे इसकी हर दीवर आपस में मिलकर मेरी चटनी बना डालेगी। यह स्टूल मेरी टांगों के नीचे से खिसक रहा है। उफ ! यह रस्सी का लठा लगता है कोई इसे ज़ोर से मेरी पीठ पर मार रहा है। ओह, मैं इन वस्त्रों में बिल्कुल नहीं सजता हूं। मेरे सारे बदन का ताप बढ़ रहा है। यह कपड़े मेरी हरारत बढ़ा रहे हैं। उफ ! बेढंगेपन की घुटन। घुटन। घुटन। घुटन। (अपने बाल नोचने लगता है) नहीं सहा जाता मुझ से। मैं अधूरा हूं ! अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं। मुझे मेरे कपड़े वापस दिला दो ! उफ! घुटन !

(उठ कर चारों ओर देखता है, घूमता है।)

सब सो रहे हैं। मजे की नींद सो रहे हैं। मेरी किसी को चिंता नहीं जैसे दुनिया की मैं एक फजूल चीज़ हूं। जैसे मैं दुनियां की कोई इकाई नहीं। किसी को मेरी कोई चिंता नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। कोई मेरा नहीं। एक निरर्थक वस्तु, तुच्छ वस्तु। उफ ! मैं अकेला हूं। सोये हुए लोगों में अकेला हूं। जागे हुए लोगों में अकेला हूं। एकांत में अकेला हूं। इस घुटन गह्वर में अकेला हूँ। अकेला ! अकेला !

उफ ! मैं जल रहा हूं। सिर से पांव तक मेरा ताप बढ़ रहा है। मैं उबल पड़ूंगा तो यहां की हर चीज पिघल जायेगी। मैं लावा उगलूंगा। नहीं सहा जाता मुझसे। (चिल्लाता है) मुझे छोड़ दो। छोड़ दो मुझे ! मैं बीमार हूं, मैं बुखार में जल रहा हूं।

(एकदम खामोश हो जाता है। मुन्शी को घूर कर देखता है, जो सो रहा है। रस्सी का लठा खोल देता है। मुन्शी को टेबल से बांध देता है। रस्सी को अपनी कमर के साथ बांधकर खींचता है। चिल्लाता है।)
चोर ! चोर ! चोर ! पकड़ लिया। चोर चोर चोर...

मुन्शी : (जागकर) कहां है ? कहां है, ओ ओ, अरे रे रे रे...

रति : चोर चोर चोर चोर चोर। पकड़ लिया। चोर चोर चार...
(सारी चौकी के सिपाही अस्तव्यस्त, नंगी अधनंगी दशा में अन्दर आते हैं। केवल इंस्पेक्टर नाइटस्यूट पहन कर अपने कमरे से आता है। सभी रतिरमण को घेर लेते हैं।

पहला सिपाही : कहां है ?

दूसरा ,, : अरे बाबू, तुम ! क्या माजरा है ?

तीसरा ,, : यह क्या तामाशा है, हवल्दार को बांध लिया है ?

रति : चोर...चोर...चोर पकड़ लिया चोर...चोर...चोर।

इंस्पेक्टर : (अन्दर आकर) पकड़ लो ? कौन है, कैसे घुस आया ? अरे ! अरे आप ह्वाट नानसेंस ?

रति : चोर। यह रहा मेरा चोर। मैंने रस्सी से बांध लिया है। वरदी चुरा रहा था। चलो, पुलिस थाने पर चलो !

इंस्पेक्टर : छोड़ दो। खोल दो रस्सी। क्या पागलपन है ?

मुंशी : साहब, मैं केवल सो रहा था। बाबू की चिल्लाहट सुनकर जाग पड़ा तो अपने को इस रस्सी में जकड़ा पाया।

रति : यह चोर है। मेरी मदद करो। मुझे देखो मैं पुलिसमैन हूं।

इंस्पेक्टर : छोड़ दो इसे।

रति : तुम कौन होते हो मुझे रोकने वाले, मैं इस चोर को पकड़वा कर ही रहूंगा।

इंस्पेक्टर : मैं यहां का इंस्पेक्टर हूं और यह सभी मेरे सिपाही हैं।

रति : एकदम गलत। सिपाही मैं हूं तुम कोई इंस्पेक्टर नहीं हो। तुम्हारे पास कोई वरदी नहीं है, ये सब नंगे हैं। तुम नंगे हो। साधारण आदमी हो। फूहड़ हो।

इंस्पेक्टर : बंद करो यह बकवास।

रति : तुम इस मामले में दखल मत दो। यह मेरा चोर है। मैं इसे थाने ले जाऊंगा। तुम सभी चोर की मदद करते हो। जुर्म करते हो।

इंस्पेक्टर : शट-अप, पकड़ लो इसे। और खोल दो हवलदार की रस्सियां।
(रस्सियां खोल दी जाती हैं। रति-को कुछ सिपाही पकड़े हुए हैं।)

रति : छोड़ दो मुझे, मैं झगड़ालू आदमी नहीं हूं। छोड़ दो।
(छोड़ देते हैं)

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, ऐसी हरकतों से आप अपना केस कमज़ोर कर रहे हैं। मुझे आपसे यह उम्मीद नहीं थी। यह बच्चों जैसी शरारतें। ... आप अभी तक सोये नहीं ?

रति : मुझे नींद ही नहीं आती। मेरा अपना बिस्तर होता तो मैं उस में नंगा सो कर लम्बा हो जाता। मेरा यहां पर दम घुटता है। इस कमरे की घुटन मुझे चुभ रही है।......यहां पर एक खिड़की भी नहीं, जिसमें से पवन का एक एक झोंका आकर मुझे शीतल कर देता। देखिये, मेरा सारा बदन जल रहा है। मेरी आंखों के आगे अजब-अजब रंग के गोल गोल दायरे उभर रहे हैं। हर रंगीन दायरे में चमकदार बिन्दू है। और .... और फिर यह अंधेरा। उफ !............

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, ठीक यही रहेगा कि आप हम लोगों को परेशान न करें।

रति : नहीं। मैं आप लोगों को परेशान नहीं कर रहा हूं। केवल मेरे दिमाग में आप लोगों के भूत घुस आये हैं।.. नंगे-अधनंगे भूत। मैं उनकी छाया देख देख कर डर रहा हूं।

इंस्पेक्टर : शट-अप। आइ वॉर्न् यू। अगर आप फिर ऐसी हरकतों पर उतर आये तो मैं आपके हाथ पैर बांध कर उस कोठरी में बंद कर दूंगा।
(जाने लगता है)

रति : कोठरी !

इंस्पेक्टर : दिखाओ इसको कोठरी। हटाओ उसका पर्दा। मिस्टर मदन, खामोशी से बैठ जाइये।

(पर्दा उठता है। कोठरी दिखाई देती है। रति समीप जाता है। रोशनियां कम होती जा रही हैं। रति की छाया सींकचों पर पड़ती है। अन्दर से एक कैदी दिखाई दे रहा है। वह रति को देखता है। थोड़े समयोपरांत रति उसकी ओर पीठ करके सिर को थामकर बैठ जाता है। सभी चले जाते हैं।

मुंशी : (पुनः सोने का उपक्रम करते हुए) भाई साहब, अब ज़रा सोने दीजियेगा। दिन भर घूमते रहने के बाद रात के ये दो पहर सोने को मिलते हैं।

रति : सो जाओ वत्स, मेरे ज़िगरी दोस्त, आराम से सो जाओ। मैं केवल तुम्हारे खर्राटे गिनता रहूंगा। (मुंशी सो जाता है। रति कैदी की ओर नज़रें घुमाता है।)

कैदी : हः हः हः (हंसता है)

रति : शि-इ-इ।

कैदी : लगता है नये आये हो। बिल्कुल नये।

(रति खामोशी से खड़ा हो जाता है।)

कैदी : हर नया यहां आकर पहले तूफान मचाता है लेकिन फिर बर्फ की तरह ठंडा हो जाता है। इस अधेरे का आदी हो जाता है।

रति : कौन हो तुम ?

कैदी : हूं। यह पूछने से तुम्हें क्या मिलेगा ?

रति : मैं तुम्हें जानने की कोशिश करूंगा। किस इलज़ाम में पकड़े गये हो ?

कैदी : ये चाहते हैं कि मैं उन के बनाये हुए झूठे आरोप का इकरार करूं।

रति : किस बात का आरोप लगाया है तुम पर ?

कैदी : चोरी का।

रति : ओ, क्या चुराया है तुमने ?

कैदी : अफसोस इस बात का है कि मैं ने कुछ भी नहीं चुराया है। लेकिन

मैं ही चुराया गया हूं। अपनी छोटी-सी दुनिया से चुरा कर मुझे यहां फेंक दिया गया।

रति : कितने दिनों से यहां हो ?

कैदी : यहां दिनों का कोई हिसाब नहीं रहता। न कोई खिड़की न कोई रोशनदान। हर वक्त सन्नाटा छाया रहता है। केवल वह छोटा सा बिजली का लैम्प जलता रहता है। कब सूरज चढ़ता है, कब ढलता है, इस का मुझे कोई पता नहीं। यहां पर कोई घड़ी नहीं, लगता है यहां पर समय गतिहीन हो गया है और ज़िंदगी बेजान हो गई है।

रति : तुम ठीक कह रहे हो। यहां पर केवल घुटन है।

कैदी : यह प्रारम्भिक अवस्था है। फिर घुटन के आदी हो कर घुटन में ही लीन हो जाओगे। अंधकार की निस्तब्धता के पात्र बन जाओगे।

रति : नहीं, मैं ये दीवारें तोड़ दूंगा। मुझे मेरा व्यक्तित्व वापस पाना होगा। मुझे मेरे कपड़े ढूंढने होंगे। अपनी सर्टिफिकेट्स प्राप्त करनी होंगी। वही मेरी संचित सम्पत्ति है। मेरा व्यक्तित्व है। मैं वह नहीं जा तुम मुझे इस वरदी में देख रहे हो। यह झूठन है। इस अंधेरे की झूठन। इस घुटन की झूठन।

कैदी : ह: ह: ह: (हंसता है) नये जी, मैं ने भी पहले कुछ ऐसा ही समझा था परन्तु फिर धीरे धीरे सब ठंडा हो गया। बस अब खामोशी ही साथ देती है।

रति : लेकिन मुझे यह खटकती है। मेरे व्यक्तित्व में खामोशी के लिए स्थान नहीं है। मैं झंकार हूं। कोहराम हूं। हलचल हूं। टंकार हूं। ध्वनि हूँ।

कैदी : जब थक जाओगे तो स्वत: खामोश हो जाओगे।

रति : नही, मैं अपने तप से यहाँ की दीवारें पिघला दूंगा। यहां से निकल भागूंगा! मैंने कोई चोरी नहीं की है। मुझ पर कोई इलज़ाम नहीं। मैंने वगैर टिकट सफर नहीं किया है। मैंने कन्सेशन् फार्म भर कर टिकट प्राप्त की है।

कैदी : तो फिर पकड़े ही क्यों गये ?

रति : क्योंकि मैं टिकट न दिखा सका। गाड़ी में मेरे कपड़े, टिकट, रुपये,

बिस्तर, बक्स...सब कुछ की चोरी हो गई।

कैदी : और तुम्हारा व्यक्तित्व ?

रति : इन सब चीज़ों में ही मेरा व्यक्तित्व निहित है। ...व्यक्तित्व एक मुखौटा है जिसके दो रूप होते हैं—धूप और छाया। धूप-रूप इतनी प्रखर किरणों वाला होता है कि हर देखने-वाले की आंखें चौंधिया जाती हैं। और छाया-रूप सभी देखते हैं। पर मेरा मुखौटा उतर चुका है। मेरा नंगा मुंह सामने है, देखो तो इस पर मेरे उबलते ताप की रेखायें उभर रही हैं।

कैदी : कैसा ताप है तुम में ?

रति : ओह, तुम नहीं समझोगे, पुराने जी। मैं इन कपड़ों में बेढंग लगता हूं। मैं ऊब गया हूं। मैं घुट रहा हूं। मेरा आवरण मुझ से चुराया गया है। तुम नहीं जानते हो मुझे यहां अर्धनग्न लाया गया। अधूरा लाया गया।

कैदी : लेकिन क्यों ?

रति : ओह, मुझे हिंडोला याद आ रहा है। तुम कभी हिंडोले में झूले हो?

कैदी : झुलाया होगा मेरी मां ने बचपन में।

रति : छिः बचपन में। रेलगाड़ी का सफर हिंडोले की हिलन-डुलन के बराबर है। है न ? और फिर एक बादाम सी आंखों वाली लड़की का साथ। लोहे की पटरी पर लोहे के पहियों की खटरपटर। इंजन की छकछकाहट। इसी समय लड़की डिब्बे की रोशनियां बुझा कर तुम्हें बाहुपाश में ले ले तो ?

कैदी : तौबा तौबा : सब लोगों के सामने ?

रति : पुराने जी, उस डिब्बे में हम दोनों के सिवा किसी आदमजात की सांस नहीं चल रही थी।

कैदी : भई, यह तो शिष्टाचार के विरुद्ध है।

रति : फिर वही आवरण। अपने अन्दर के उबलते ताप को कुंठित करने के लिए लोग शिष्टाचार का आवरण ओढ़ते हैं। छिः, शिष्टचार !

कैदी : आप तो क्रांतिकारी लगते हैं ?

रति : हा: हा: हा: ? तुम तो हमें बहुत दूर खींच रहे हो। बहुत दूर। तुम ने कभी दिल की धड़कने गिनी हैं ?

कैदी : नाड़ी देखते समय केवल डाक्टर लोग गिनते हैं।

रति : गिनते हैं। वे केवल शारीरिक ताप देखते हैं। मानसिक नहीं। यह नित्य हमारे मनों में विराजमान रहता है। हम केवल शिष्टाचार के आवरण से इसको दबाते हैं। उफ! मेरे कपड़े चुराये गये। टिकट चुराई गई। ले गये, ले गये, मेरा व्यक्तित्व ले गये।

कैदी : तुम्हारी बातें एब्स्ट्रेक्ट-सी लगती हैं। आखिर यह सब कैसे हुआ ?

रति : ओह! तुम भी यह प्रश्न पूछ रहे हो ? सब लोगों की जिज्ञासा एक समान (तीन प्रश्न सूचक चिन्ह हाथ से हवा में बनाता है) क्या ? क्यों ? कैसे ? हां! हां! हां! भाई, इस जगह का नाम क्या है ?

कैदी : थाना।

रति : थाना! और इस, मेरा मतलब है, इस पुलिस चौकी का नाम ?

कैदी : थाना! पुलिस थाना।

रति : थाना। था—ना। रेलवे स्टेशन का नाम थाना। शहर का नाम थाना, पुलिस स्टेशन का नाम थाना।

कैदी : क्यों, क्या ढूंढ रहे हो इन नामों में ?

रति : कुछ नहीं। न जाने इन नामों में भूतकाल की नकारात्मकता क्यों मिल गई है। खैर, छोड़ दो। यह बताओ तुम यहां क्यों कैद हो ?

कैदी : इस झूठे आरोप का इकरार करने के लिये। यहां की यातनायें सहने के लिए। लेकिन मैं कभी इनके बनाये झूठ का इकरार नहीं करूंगा।

रति : कौन सा आरोप लगाया है तुम पर ? चोरी का न ?

कैदी : हां, लेकिन मैंने चोरी नहीं की है। वास्तविकता कुछ और है।

रति : नहीं तो क्या मैं कभी बगैर टिकट सफर कर सकता हूं ? टिकट खो गया। कपड़े चुराये गए, व्यक्तित्व चुराया गया। मैं एक शिकायत करने आया था। मदद मांगने आया था तो यहां लाया गया। यह मुझे मुर्गा बनाना चाहते हैं लेकिन मैं इन के पिंजरे में फंसने वाला नहीं। मेरे विचार आकाश फांद सकते हैं। मैं अपनी

स्मृति के बल पर इनको चकित कर दूंगा। प्रमाण मांगेंगे तो बीस दफ्तरों से रिकार्ड मंगवाऊंगा।

कैदी : परन्तु मेरे केस में यही एक कमी है। गवाह नहीं। प्रमाण नहीं।

रति : पर तुमने चुराया क्या है ?

कैदी : कुछ भी नहीं। नये जी, मैं एक चित्रकार हूं। नाम नहीं बताऊंगा। मेरे चित्रों के बारे में समाचार पत्रों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। और अगर यह लोग मुझे फंसाने में सफल हुए तो बड़ा स्कैण्डल हो जायेगा।

रति : तुम्हारा नाम हरेक की जबान पर होगा। एकदम मजनूं बन जाओगे यही न ! लोगों से डर लगता है ?

कैदी : मेरा जीवन बेकार चला जाएगा। मैंने एक अमीर और प्रभावशाली आदमी की लड़की से प्रेम किया है।

रति : (हंसता है) प्रेम किया है ? भाई, प्रेम जैसी कोई चीज़ भी दुनिया में है ? न जाने किस डरपोक कवि ने इस कायर शब्द को रचा है। सत्य जो है, वह है वासना। और शिष्टाचार के बन्दों ने उसकी नग्नता छुपाने के लिए एक आवरण बनाया है, एक वरदी बनाई है—प्रेम। इस शब्द की आड़ लेकर हमारे लिए कहानियां रची हैं।

कैदी : बाप को अपनी संतान के प्रति, माता को अपनी औलाद के प्रति वासना जैसी दुर्भावना नहीं होती है। प्रेम अमर है। निष्कलंक है। शाश्वत है। वासना से उच्च है।

रति : पुराने जी, यह केवल लगाव की कड़ियां है। संबंध की कड़ियां हैं। यदि किसी नवजात शिशु को अपनी मां के स्थान पर कोई अन्य नारी पाल पोस कर बड़ा करे तो क्या उसे अपनी असली मां के प्रति प्रेम होगा ? केवल लगाव की कड़ियां पराई नारी के साथ जुड़ गई होंगी। हम वासना के मारे, आर्कषण के शिकार होकर

प्रेम का स्वाँग रचते हैं। प्रेमाभिनय करते हैं। असली मुख अन्दर और नकली मुखौटा सामने। क्यों ?

कैदी : आप अपनी राय मुझ पर ठोंसना चाहते हैं ?

रति : नहीं ! कभी नहीं ! केवल मैं अपना व्यक्तित्व वापस पाना चाहता हूं। जिसे मैं खो चुका हूं। जिसके बिना मैं अधूरा हूं। बिल्कुल अधूरा हूं।

कैदी : यहां से निकलने के दो रास्ते हैं। या तुम पूरे होकर निकलोगे या इस अधूरेपन को भी गंवा दोगे।

रति : पर तुम इस पिंजरे में कहां से आ फंसे ?

कैदी : मैं उस लड़की को चित्रकला सिखाया करता था। रोज उसके बंगले पर जाता था। रंगों की पहचान, इस्तेमाल और ड्राईंग सिखाता। बस, यह था मेरा काम। शुरू में वह बहुत डल थी। धीरे धीरे उसने फूल, पक्षी, वृक्ष तथा अन्य ऑब्जेक्ट्स् बनाना सीख लिए।

रति : मेहनत काफी करती थी। क्यों ?

कैदी : हां, लेकिन फिर उसकी चित्रकला मेरे लिये उलझन बन गई। जहां वह फूल बनाती थी, वहां पर उड़ते हुए भवरे मंडराते थे। जहां शम्अ जलती थी, वहां पर परवाने को भी खींच लाती थी। मेरा मतलब है...!

रति : मतलब मैं समझ गया तुम आगे कहो क्या हुआ ?

कैदी : ऐसे ही न जाने कितने विषय वह खुद चुन-चुन कर किस्म-किस्म के रंगों में बनाती थी। उसके उन चित्रों को देख कर मैं शर्मिन्दा हो जाता था। मैं उससे निराश हुआ। मैं चाहता था कि वह कुशल कलाकार बने किन्तु मुझे एहसास हुआ कि वह भावुकता के जगत में अपने को खो रही है। उस में पहली जैसी जिज्ञासा न रही।

रति : मुझे जिज्ञासा भरी नीची-नीची नजरों और झुकी-झुकी पलकों वाली लड़की का सुडौल चेहरा याद आ रहा है। तुम ने किसी लड़की के होठों की थिरकन देखी है ?

कैदी : मैंने केवल मोनालिसा की मुस्कान देखी है। मौन और शांत। तुमने मोनालिसा का चित्र देखा है ?

रति : फोटोग्राफ देखे हैं। मुख नहीं, मुखौटा देखा है। जिन में कोई आकर्षण नहीं। केवल मैं उसके उभरे स्तन देखकर मुस्कराया था। छोड़ दो इस विदेशी चित्र को। यह बताओ तुम्हारी इस स्वदेशी 'लड़की' का क्या नाम है ?

कैदी : (चुप रहता है)

रति : मैं ने उस लड़की का नाम पूछा है ?

कैदी : उसका बाप मेरे केस के साथ उसका असली नाम नहीं लेने देता। अमुक बाप की बेटी लिखवाता है। फिर भी मुझे उसका नाम बहुत भाता हैं।

रति : क्या है वह ?

कैदी : प्रेरणा।

रति : (हंसता है) वाह, वाह ! असली कलाकार निकले। तो तुम ने अपनी इस नायिका को कल्पित नाम प्रेरणा दिया है। तुमने अपने आस-पास की हर चीज का नाम प्रेरणा रखा होगा। बिल्कुल अनाड़ी हो अनाड़ी। कल्पना लोक में विचरण अच्छा नहीं। यह माया है, माया। प्रेरणा एक नशा है जो स्थायी नहीं, जल्द ही उतर जाता है। एक मृगमरीचिका है। भलाई इसी में है कि इसे दूर से ही प्रणाम करो।

कैदी : आप बिल्कुल मेरे अन्तर को समझ गए। वास्तव में उस लड़की का नाम प्रेरणा नहीं। केवल मैं उसे यही नाम दे सकता हूं ! आप दार्शनिक लगते हैं ?

रति : न भाई न ! मुझे केवल किसी के दर्शन मात्र ने उन्मादित किया है। उफ ! मुझ से इस दशा में रहा नहीं जाता। मुझे दर्द हो रहा है। मेरा सारा बदन जल रहा है। तुम से यहां अकेले खामोश कैसे बैठा जाता है ?

कैदी : यहां आकर मुझे भी दर्द हुआ था। मैं भी तड़प उठा था। फिर स्वत: धीरे-धीरे ठण्डा हो गया हूं—यहां की यातनायें सहकर।

रति : उफ ! क्या सचमुच तुम्हारे निकलने का कोई उपाय नहीं ?

कैदी : जब तक वह लड़की स्वयं आकर मेरी ओर से गवाही न दे शायद इल्जाम हर सूरत में मेरे ही विरुद्ध रहेगा।

रति : आखिर तुमने चुराया क्या है ?

कैदी : मुझे उस लड़की के प्रभावशाली धनी बाप के कथनानुसार चोर कहा गया है। जब मैं जान गया कि वह लड़की मेरी ओर आकर्षित है तो मैंने उस के घर जाना छोड़ दिया। मैं एक मध्य-वर्गीय मामूली आदमी, उसके अयोग्य था। परन्तु वह लड़की मेरे स्टूडियो पर आने लगी। रोज आने लगी।

रति : और तुम को अपने भावुक चित्र दिखाया करती थी।

कैदी : नहीं, चित्र नहीं दिखाती थी। केवल मेरे बनाए चित्रों को गौर से देखा करती थी। मेरे साथ बहुत देर तक बातें किया करती थी।

रति : सम्बन्ध गहरा होता जा रहा था। स्लो प्रोसेस।

कैदी : फिर उसके व्यवहार में फर्क दिखाई दिया। वह सचमुच मितभाषिनी बन गई। मैं चित्र बनाया करता। वह मुझे एकटक देखती। मुझे उसकी वह मुखमुद्रा बहुत भली लगती और तब एक दिन मैंने उस का चित्र बनाया।

रति : (हसता है) तुम्हारा तापमान बढ़ने लगा। उसकी अनुपस्थिति में फिर उसके चित्र के साथ बातें करने लगे ? प्रेमाभिनय करने लगे ? क्यों ? ब्रेवो कलाकार। ब्रेवो (हंसता है)

(सोये हुए मुंशी के कानों में जोर से)

फुर–र-र-र-र-र-र-र

मुन्शी : (घबराया सा अर्धनिद्रा में) क्या है, अब क्या है ?

रति : कुछ नहीं हवलदार। सो जाइये। केवल मैं देख रहा था कि खर्राटे लेने के साथ साथ आपके नथने द्रुत-लय में थरथराते हैं ?

मुन्शी : उं ! ऊं ! उं ! ऊं ! (करवट बदल कर सो जाता है)

(कैदी हंसता है)

रति : कहो कलाकर, फिर क्या हुआ ?

कैदी : वह बहुत खुश हुई। उस दिन से उसने नित्य नये नये कपड़ों में मेरे पास आना शुरू कर दिया। नये नये रंग के नये नये डिजाइनों में वह बहुत सजधज कर आती थी। उसको देखकर मेरा दिल धड़कता था। वह एक डरेस माडल बन रही थी। उधर लोग अब तरह तरह की अफवाहें उड़ा रहे थे। परन्तु मुझे अफवाहों की चिंता नहीं थी। मैंने उसके बहुत से चित्र बनाए और फिर...

रति : रुक क्यों गए ? फिर क्या हुआ ?

कैदी : फिर मैंने न्यूड बनाने शुरू किए।

रति : लो, यह रही। आवरण में कोई आकर्षण नहीं रहा। वास्तविकता न रही। कलासिकी न रही।...तो फिर...

कैदी : वह मेरी मॉडल बन गई। मैंने उसे मॉडल रखकर बहुतेरे चित्र बनाए, बेचे और मैंने एक अच्छी धनराशि प्राप्त की। तब मैंने स्टूडियो के लिए एक नया फेशनेबल् मकान लिया।

रति : (गाता है) फुरुर फुरुर
तुतक तुतक तुतक तू तुतका तू
कदम कदम बढ़ेंगे हम मुहाज पर लड़ेंगे हम !
मुख, मुखौटे, आवरण, और वरदियां लिए
कदम कदम बढ़ेंगे हम मुहाज पर लड़ेंगें हम !

(चुप हो जाता है...खामोश)
क्षमा करना कलाकार बन्धु, यह मेरा थोड़ा सा मजाक था
मनबहलाव। तो फिर कहो तुम्हारी प्रगति कहां पहुंची ?

(कैदी खामोश रहता है)

रति : कहो न बन्धु ! क्या रूठ गए ? देखो, मेरे मजाक का बुरा मत मानना। आज की रात तुम्हें एक सुनने वाला मिला है। दिल खोल कर अपने हृदय के भार को कम करो। नहीं तो इस अंधकार में एकांत की घुटन से तुम्हारा दम घुटने लगेगा।...कहो न ?

कैदी : फिर मेरी चित्रप्रदर्शनी दूसरे शहर में हुई। हम दोनों वहां गए। सात दिन के बाद लौट आये। पांच दिन तक वह मेरे स्टूडियो में

नहीं आई। मैंने कई बार फोन किया परन्तु वह न मिली। यही उत्तर मिलता था कि वह घर पर नहीं है। सातवें दिन वह स्वयं आकर मिली, उसने मुझ से कहा, चलो, यह शहर छोड़ कर कहीं चलें।

रति : दूर, इस दुनिया से दूर। दुनियावालों से दूर। जहां तुम हो, मैं हूं और हमारी छोटी सी दुनिया हो। क्यों, यही न?

कैदी : हां! कुछ ऐसा ही लेकिन मैंने नहीं माना। वह निराश हो गई किन्तु फिर भी मेरे पास आती रही। तब एक दिन अजब बात हुई।

रति : क्यों, प्रेमी पंछियों का जोड़ा बिछुड़ गया?

कैदी : नहीं—एक दिन मैं उसका न्यूड चित्रित कर रहा था तो किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। उस समय किसी के आने की सम्भावना न थी। वह एक दम स्क्रीन के पीछे कपड़े पहनने चली गई। मैंने दरवाजा खोला तो देखा......

रति : क्या देखा?

कैदी : उसका बाप।

रति : बाप रे——फिर?

कैदी : उसको देखते ही मेरे पैरों तले धरती खिसक गई। मेरे सामने यमराज की मूर्ति थी। मुझे जिन्दगी में पहली बार अनुभव हुआ कि मैं बहुत डरपोक हूं। कायर हूं। अब वह क्या कहेगा? अपनी बेटी को मेरे कमरे में नग्न देख कर क्या समझेगा?

रति : इसमें कुछ भी समझने की बात नहीं? एक बाप अपनी बेटी को न्यूड में देखे तो कोई अजब बात नहीं।

कैदी : लेकिन मेरे कमरे में?

रति : तुम्हारे कमरे में। चित्रकार के स्टूडियो में मांडल और चित्र में क्या अन्तर? एक प्राणवान दूसरा निष्प्राण। दर्शक के लिए दोनों एक समान।

कैदी : मुझे एहसास हुआ जैसे उसने हम दोनों को नंगे देख लिया। वह उबल पड़ेगा। गोली चलाएगा। या मेरे चित्रों को तहस नहस कर देगा।

रति : (चुटकी बजाकर) हिन्दुस्तानी फिल्मों के खलनायक की भांति फ्री-स्टायल मुक्केबाजी खेलेगा। यों (अपने साथ मुकेबाजी खेलता है) हुं ! हुं ! हुं ! हुं ! क्यों ? ऐसे ही न !

कैदी : लेकिन उसने कुछ भी नहीं किया। बड़ी अधीरता के साथ कमरे के सभी चित्रों को देखने लगा और फिर मुझ से कहा (आवाज बदल कर) इन सब चित्रों की कितनी कीमत मांगते हो ? मैं चुप रहा। कहो, कितनी कीमत चाहते हो ? उसने फिर कहा।

रति : (नीलामी की तरह) लाख, पांच लाख, दस लाख, बीस लाख, क्यों तुम फिर भी चुप रहे ?

कैदी : हां। मैं बिल्कुल चुप रहा। खामोशी से केवल उसके बूटों की चपटी नोकों को देखता रहा। भय से मेरा सारा शरीर कांप रहा था। मुझे लगता था कि वह अपने जूते निकाल कर मेरी नाक पर मारेगा। मेरी नाक से खून का फुव्वारा फूटेगा।

रति : और बाप की बेटी अपने प्रियतम पर होते प्रहारों को स्क्रीन की ओट से देखती रहेगी। उसके नथनों से बहते हुए खून से अपने भावुक चित्रों पर मल कर अपने प्रणय-खेल का अन्त करेगी। यही न !

कैदी : नहीं। ऐसा कुछ नहीं हुआ ! मैंने बड़ी हिम्मत से चित्र बेचने से इन्कार कर दिया।

रति : ओ, तुमने घर आई लक्ष्मी को स्वीकार करने से इन्कार किया ? आखिर क्या था तुम्हारे चित्रों में ? सोना भर रखा था ? हीरे जड़े थे।

कैदी : नहीं। मैं उन्हें बेचना नहीं चाहता था। मुझे उनके साथ मोह था। उनके साथ आत्मीयता थी।

रति : हूं, परन्तु वह यह सब चित्र क्यों खरीदना चाहता था ?

कैदी : वह मेरे चित्रों में अपनी बेटी की परछाइयां पा रहा था।

रात : ऐसा तुम समझते हो या वह समझता था ?

कैदी : शायद हम दोनों समझते थे ?

रति : फिर वह चला गया ?

कैदी ; हां, एक भले आदमी की तरह।

रति : और उसकी लड़की ?

कैदी : वह एक दम घबरा गई थी और अधमुई सी मेरी बाहों में गिरकर सिसक-सिसक कर रोने लगी।

रति : **(बाहें पसारता है)** आह, मुझे लगता है कि बादाम जैसी आखोंवाली लड़की मेरे दायें कंधे पर अपनी गर्म सांस छोड़ रही है।

कैदी : फिर वह संभल गई और अपने घर चली गई। फिर कभी नहीं आई। तब मैं एक दिन उसके प्रभावशाली पिता के षडयंत्र में फंस गया और आज तक यहां की यातानायें सह रहा हूं। लेकिन मैं कभी इनके बनाये झूठ का इकरार नहीं करूंगा। मैं मरना स्वीकार करूंगा किन्तु झूठे आरोप कभी कबूल नहीं करूंगा।

रति : **(उत्तेजित होकर)** झूठ, तुम झूठ बोल रहे हो। तुम कोई कलाकार नहीं हो। मैं समझ गया। इस चाल को समझ गया। अच्छी तरह से समझ गया। तुम इस इंस्पेक्टर के ज़रखरीद गुलाम हो। कहानियां गढ़ते हो। तुम पीटे नहीं जाते हो। तुम चाहते हो कि तुम्हारी प्रेम-कहानी से प्रभावित हो कर मैं तुम्हें यह बताऊं कि मैं कौन हूं ?· आरोपित आरोप को स्वीकार करूं।...नहीं बताऊंगा मैं। कहाँ छुपाया है तुमने टेपरिकार्डर। बताओ ?...तुम यह सारी वातें टेप कर रहे हो ? बताओ ? बोलो ? जवाब दो ? बताओ ? तुम मेरे साथ नाटक खेल रहे हो ? कहो ?

कैदी : नये जी, यह क्या कह रहे हैं आप ? आप बहक रहे हैं। मैं नाटक नहीं खेल रहा हूं। मैं बन्दी हूं।

रति : बड़े चतुर मालम होते हो। तुम मुझे चकमा नहीं दे सकते हो ? कहो ? तुम मुझे इन लाठियों से डरा रहे हो ? इन की उन लकड़ी की बंदूकों का खौफ दिला रहे हो। मैं इन सब से नहीं डरता हूं। मैं तुम्हारी तरह कायर नहीं हूं। डरपाक नहीं हूं। मैं इन

सब को जला दूंगा। तुम्हें और तुम्हारी कहानी को खत्म कर दूंगा। मैं जल रहा हूं। मैं उबल रहा हूं। मैं तप रहा हूं। देखो ?

(अपनी शर्ट के बटन खोल देता है)

मैं यहां की सारी सम्पत्ति भस्म कर दूंगा। यह लाठियां.........

कैदी : नये जी, नये जी, ओ...........

रति : (लाठियां उठा कर स्टेज पर फेंक देता है) एक_ ...दो......तीन ......चार.........

कैदी : नये जी, नये जी। यह क्या कर रहे हो ? नये जी ! ज़रा सम्भल जाइये। ठहर.........

रति : यह रही बन्दूकें, नकली बन्दूकें, बनावटी बन्दूकें। (फेंक देता है) एक......दो......तीन......चार.........

(सिपाहियों के कमरे में चला जाता है।)

कैदी : नये जी ! यह अच्छा नहीं। सब जाग जायेंगे तो आप पर सख्ती करेंगे। आपको बांध लेंगे। छोड़ दीजिये। नये जी, नये जी ! कहां चले गये ! वहां सिपाहियों का कमरा है। वह सो रहे होंगे। नये जी, अंधेरे में ठोकर लगेगी। नये जी !

रति : (वरदियां ले कर आता है) अन्दर सोये पड़ों की वरदियां। कमरबन्द ......बेल्ट......(फेंकता जाता है)...टोपियां......

कैदी : क्या कर रहे हैं आप। नये जी।

रति : (मुन्शी की वरदी उठा कर फेंकता है) वहाँ सोये पड़े जानवर की वरदी।

कैदी : नये जी, यह क्या कर रहे हैं आप ?

रति : अकर्मण्यता की थकान को जला रहा हूं। (इंस्पेक्टर के कमरे में जाता है।)

कैदी : यह ठीक नहीं है। इस का परिणाम ठीक नहीं होगा। यह आप

को मुक्त नहीं करेंगे। बांध लेंगे। नये जी, मेरी बातों पर विश्वास करो। मेरा कहा मान जाओ। वापस आओ। वहां पर इंस्पेक्टर का कमरा है। वह जाग जायेगा तो तूफान मचायेगा। नये जी, नये जी !

रति (वरदी लेकर) इंस्पेक्टर की वरदी। टोपी। कमरबन्द......लो लग गई आग। लग गई। आग लग गई।

(वरदियां हाथ में उठाता है)

जल गया...जल गया...जल गया.. आग ! आग !

(सोये हुए मुन्शी का ओढ़ने का कपड़ा उठा लेता है)

आग ! आग !

मुन्शी : (जाग कर) कहां है ? कहां है ?

रति : जल गया ! जल गया ! जल गया ! आग ! आग !

मुन्शी : कहां है ? क्या जल गया ?

रति : आग ! आग ! आग !

(सारी पुलिस चौकी जाग पड़ती है। घबराहट के मारे सभी सिपाही अस्त-व्यस्त नंगे-अधनंगे रंगमंच पर आते हैं। इंस्पेक्टर भी आता है)

इंस्पेक्टर : क्या है ? बुझा दो ? जल्दी बुझा दो। क्या जल रहा है ?

रति : जल गया ! आग ! आग !

इंस्पेक्टर : (रति-को पकड़ कर) कहां है आग ?

रति : (दिल पर हाथ मार कर) यहां ! दिल जल रहा है।

इंस्पेक्टर : दिल जल रहा है। पहली बार चोर जागा था। अब दिल जल रहा है। क्या मिलता है आपको इस मज़ाक से ? मैं इस तरह की अनुचित हरकतों का मतलब नहीं समझा ?

रति : ओह इंस्पैक्टर, तुम नहीं समझोगे। मेरे मस्तिष्क में ऐक चरखा है, पहिया है, एक दायरा है जो घूमता रहता है। जब तेज घूमने लगता है तब मुझे अपनी हरकतों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता।

मुझे अपनी करनी पर वश नहीं रहता। लगता है मैं उस दायरे के केन्द्र-बिन्दु को खो देता हूं।

इंस्पेक्टर : अगर आप इस थाने के बाहर ऐसा हुल्लड़ मचाते तो आप पर नया जुर्म आयद होता। हवलदार! बांध दीजिये इसके हाथ पैर। और देखो, खुद यहां पर रह कर निगरानी रखो। मिस्टर मदन, अब आप हमें और परेशान न कीजिये।......उठाओ यह सब चीजें यहां से। बांध लो दोनों हाथ-पैर?

रति : लेकिन मेरे मस्तिष्क में घूमने वाले दायरे को तुम नहीं रोक सकते, वह चलता रहेगा। घूमता रहेगा।

(उसके हाथ पांव बांध दिये जाते हैं। इंस्पेक्टर चला जाता है)

चलता रहेगा। अरे भाई, जरा धीरे से बांधो। रक्त मांस के हैं, लकड़ी के नहीं।

सिपाही : यह सब चीजें इसने कैसे यहां पर जमा करदीं?

मुन्शी : घूम घूम कर। लेकिन अब कहां घूमेगा। लो बाबू, अब जरा सम्भल कर रहना।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

सिपाही : अब नींद नहीं आने की। लो भई, हम चले।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

मुन्शी : अपनी भी नींद उड़ गई। बाबू, खामोश रहो।

रति : घूमता रहेगा, चलता रहेगा।

(धीरे धीरे रोशनी कम होती है। सभी अपने पूर्व स्थानों को चले जाते हैं। कैदी पुनः दिखाई देता है)

कैदी : नये जी, यह आप ने क्या किया? आप मुझ पर विश्वास कीजिये, मैं इंस्पेक्टर का आदमी नहीं हूं। वह बहुत बुरा आदमी है। पहले उस का रवैया हमदर्दी से भरा रहता है परन्तु फिर वह बदल जाता है। वह आदमी नहीं रहता। मैं उसकी यातनायें सह रहा हूं।

आप मुझ पर विश्वास क्यों नही करते, मैं उस का बन्दी हूं।

रति : हम अपनी स्वयंनिर्मित यातना के वन्दी हैं।

कैदी : मुझे अपना ही समझ लीजिये। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूं।

रति : मैं समझ गया, तुम झूठ नहीं बोल रहे हो। मैं भी झूठ कहना नहीं चाहता और सच छुपाना नहीं चाहता। उफ! तुम चुप रहो... चुप रहो! तुम्हारी कहानी मुझे जला देती है। मैं तप जाता हूं। उबल पड़ता हूं। तुम चुप रहो। अपने लिये चुप रहो। अपनी प्रियसी के लिये चुप रहो। कृपा करके मेरे लिये चुप रहो। चुप रहो। चुप रहो। चुप रहो.........

(रोशनियां कम होती जा रही हैं। रति-की सिसकियां सुनाई देती है।)

(पूर्ण अंधेरा)

(पार्श्व में घड़ी आठ बजाती है। जब रोशनियां जलती हैं तो एक सिपाही आकर रति–के हाथ पांव खोल देता है। रति-एकटक देख रहा है, उस की गर्दन एक ओर झुकी है। सिपाहियों का आना जाना। कैदी पर्दे के पीछे है। सवेरा हो आया है। वरदी पहन कर इंस्पेक्टर अन्दर आता है।)

इंस्पेक्टर : खोल दीं रस्सियां!...हां। .. कहिये मिस्टर मदन, अब कैसी हालत है?

रति : (खामोश)

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन, मैं आप से कह रहा हूं। कहिये, अब मिजाज कैसा है?

(रति खामोश)

इंपेस्क्टर : ओह! समझा, तो अब मौन साधने का विचार है। क्यों? मौन इकरार का दूसरा नाम है?

रति : नहीं, मौन मुर्दे साधते हैं। मैं अभी मरा नहीं हूं। मेरा दिल अब भी धड़क रहा है। आप यहां आकर मेरे दिल की धड़कनें गिन सकते हैं।

इंस्पेक्टर : धड़कनें मैं नहीं कोई और गिनेगा!

रति : ऐं !

इंस्पेक्टर : डाक्टर !......मैं ने डाक्टर को बुलाया है।

रति : क्यों, तुम्हारे सिपाहियों में से क्या कोई बीमार हो गया है ?

इंस्पेक्टर : नहीं ! मैं तुम्हारा मैडिकल ऍग्ज़ाम कराना चाहता हूं।

रति : हो, हो, ! यह ऍग्जाम अभी बाकी था। इस कमी को तुम पूरा कर रहे हो। सरकारी खर्च पर क्यों ? हः हः हः **(हंसता है)**

सिपाही : इंस्पेक्टर साहब ! डाक्टर।

(डाक्टर अन्दर आता है।)

इंस्पेक्टर : गुड मार्निग डाक्टर !

डाक्टर : गुड मार्निग इंस्पेक्टर !

रति : **(डाक्टर को देख कर)** हूं !

इंस्पेक्टर : मिस्टर रतिरमण मदन कल रात के ग्यारह बजे से यहां हैं। कभी कभी नरवस फील करते हैं। इसलिये, डाक्टर, मैं चाहता हूं कि आप इनका ऍग्ज़ाम करें।

रति : नो डाक्टर, नो ! मुझे नहीं, आप इन सब को ऍगजाम कीजिये। यह सब बीमार हैं।

(डाक्टर हंसता है। इंस्पेक्टर हैरान होता है)

आप हंसते क्यों हैं। झूठ नहीं कहता हूं। मैं ने आज रात भर इन सब को नींद में चलते फिरते देखा है। इन सभी ने अपनी अपनी वर्दियां मेरे पैरों पर फेंक दीं। अपनी टोपियां फेंक दीं। पगड़ियां फेंक दीं। कमरबन्द फेंक दिये। अपने जूने...नहीं...जूते नहीं फेंके डाक्टर, जब मैं ने इन्हें जगाया तो इन्होंने मिल कर रस्सी से मेरे हाथ पांव बांध दिये। देखो, अब भी मेरी कलाइयों पर रस्सी के निशान हैं।

(इंस्पेक्टर डाक्टर को इशारा करता है कि सिरफिरा है)

नो डाक्टर, नो ! मेरा दिमाग बिल्कुल ठीक है। बिल्कुल ठीक है। हां, ज़रा बदन तप रहा है। दर्द हो रहा है। मेरे कपड़ों की

चोरी हो गई है। टिकट की चोरी हो गई है। मेरे प्रमाणपत्रों को चुराया गया है।

डाक्टर मुझ पर विश्वास करो। मेरा व्यक्तित्व चुराया गया। मैं अधूरा हूं। मुझे इन की वरदी नहीं चाहिए। मैं बेढंगा लगता हूं। अजीब लगता हूं।

डाक्टर : (स्टेथस्कोप् लेकर) जरा मुझे देखने दीजिये ?

रति : फफ् !

डाक्टर : ज़रा सांस खींचिये ?

(रति खर्राटे भरता है)

ज़रा धीरे से, खर्राटे नहीं। सांस खींचिये।

रति : डाक्टर, यहां सभी को खर्राटे लेने की आदत है।

डाक्टर : अपनी नाड़ी दिखाइये ?

रति : आह ! डाक्टर, मैं तप रहा हूं। उबल रहा हूं।

डाक्टर : बुखार तो बिल्कुल नहीं है।

रति : डाक्टर, यह आत्मा का बुखार है। मैं तप रहा हूं।

डाक्टर : इस समय कहां पर दर्द हो रहा है ?

रति : उफ ! डाक्टर यह देखना तुम्हारा काम है। सच पूछो तो मुझे अपने व्यक्तित्व के छिन जाने का बुखार है। मुझे अपने व्यक्तित्व से लगाव है। आत्मीयता है। अपनापन है। मुझे अपने कपड़े और सर्टिफिकेटों के छिन जाने का दर्द है। मैं अधूरा हूं। नंगा हूं। डाक्टर, आइ एम एकस्पोजड। मैं अपने व्यक्तित्व के दायरे से अलग हूं। मैं केवल केन्द्र–बिन्दु रह गया हूं।

डाक्टर : हूं ! ......(विचारशील होकर चक्कर काटता है......खामोशी)

रति : डाक्टर आपके पास थरमामीटर होगा ?

डाक्टर : हां ! क्यों ? तुम्हें तो बुखार नहीं।

रति : नहीं है, पर मैं तप रहा हूं।

(डाक्टर थरमामीटर निकालता है)

डाक्टर : तुम मज़ाक खूब जानते हो !

रति : मैं उस शहर में नहीं रहता जो बे–मज़ाक हो। डाक्टर ! इस पर यह निशान क्यों लगे हैं ?

डाक्टर : क्यों, जानते नहीं हो, यह तापमान के चिन्ह हैं। हरारत देखने के निशान।

रति : उफ् ! मेरा ताप इन चिन्हों की सीमा का अतिक्रमण करेगा। क्यों ?

डाक्टर : मैं आपका मतलब नहीं समझा ?

रात : इसका पारा उतर चुका है। है न ?

डाक्टर : नहीं तो ?

रति : तो शांत होगा, ठंडा होगा, मौन और खामोश होगा। ठीक ?

डाक्टर : समझ गया। (थरमामीटर जेब में रखता है।) मैं समझ गया। इंस्पेक्टर, आप जानें और आप का काम। फिकर करने की कोई गुंजाइश नहीं। ऐवरी थिंग इज़ नारमल।

(चला जाता है। ...इंस्पेक्टर कुछ सोचता है)

रति : ओह, डाक्टर, तुम सचमुच एब्नारमल हो......इंस्पेक्टर, तुम मेरे विचारों का पोस्टमार्टम कराना चाहते थे। क्यों ?

इंस्पेक्टर : आपका मतलब ?

रति : (मुस्कराकर) कुछ नहीं।

इंस्पेक्टर : मिस्टर मदन। मैं बहुत कोशिश करता हूं कि आप को समझ पाऊं पर.........

रात : उफ ! मेरे मस्तिष्क का पहिया फिर घूमने लगा। चलने लगा। घूमने लगा। इंस्पेक्टर, चलने लगा। घूमने लगा।

(चेतना प्रवेश करती है। उसके हाथ में हेंगर हैं जिस पर सूट हैं और दूसरे हाथ में बूटों का जोड़ा और पर्स है।)

चेतना : ओह ! मिस्टर मदन ! -

रति : (चौंक पड़ता है। मुंह से चीख निकल पड़ती है) ओ . इ... इ...इ...(अपने दोनों हाथों से वह अपने मुंह को छुपाता हैं।)

चेतना : इंस्पेक्टर साहब ! नमस्ते, आपका बहुत-बहुत शुक्रिया । मैं ने इन्हें पा लिया।...ओह !...मैं रात भर...जागती रही। ..कई बार स्टेशन मास्टर को टेलिफोन किया। ..कहीं कुछ पता न मिला और तब अभी अभी...कोई एक घंटा पूर्व ....

(रति एकदम उसके हाथ से हैंगर छीन लेता हैं। बह स्वयं गिर पड़ते हैं। वह उन्हें उठा लेता है। और भाग कर इंस्पेक्टर के कमरे में चला जाता है।)

ओह ! बस यही एक आध घंटा पूर्व स्टेशन से टेलिफोन पर किसी ने बताया कि हो सकता है कि बगैर टिकट पकड़ा गया आदमी ही मिस्टर मदन हो, आपका बहुत शुक्रिया......(पर्स खोल कर) इंस्पेक्टर यह रहा इन का टिकट ।

इंस्पेक्टर : (टिकट लेकर) आपको मिस्टर मदन का सामान और यह टिकट वगैरा लेने से क्या मतलब था ?

चेतना : इंस्पेक्टर ! आप नहीं समझेंगे। इन्हें सम्भालने की आवश्यकता है। बहुत आवश्यकता है।

इंस्पेक्टर : ठीक है। अब जीवन भर शौक से सम्भालिये परन्तु यह तो बताइये जब आप रेलवे स्टेशन पर उतरीं तो आप इन्हें क्यों नहीं ले गईं ? (एक पुलिसमैन स्टेज पार करता हैं। मुन्शी कुछ क्षण ठहर कर इंस्पेक्टर के कमरे में जाता है।)

चेतना : इंस्पेक्टर साहब, जब स्टेशन समीप आ रहा था तो मैं ने सब सामान बांध लिया था। लेकिन मिस्टर मदन लैटिरन में थे। स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो मैंने सामान उतरवाया। प्लेटफार्म से जब इन्हें देखने गई तो यह कहीं नहीं मिले। मैंने इन्हें इधर उधर ढूंढा पर कहीं नहीं मिले। मैंने स्टेशन मास्टर से कहा कि यदि मिस्टर मदन को वह देखें तो उन्हें मेरे घर भेज दें।

इंस्पेक्टर : आप इसी शहर में रहती हैं ?

चेतना : जी हां ।

इंस्पेक्टर : आप का नाम ?

चेतना : चेतना ।

इंस्पेक्टर : आपका मिस्टर मदन से क्या रिश्ता है ?

चेतना : (घबरा कर) जी, कोई नहीं ।

इंस्पेक्टर : ओ आई सी । जान पहचान कितनी पुरानी है ?

चेतना : जी, हम दोनों गाड़ी में मिले हैं ।

इंस्पेक्टर : यह बात । अब मैं इस पहेली को कुछ कुछ समझ रहा हूं । (टिकट देखकर) चेतना जी, इस टिकट पर तो अभी सफर पूरा नहीं हुआ है । मिस्टर मदन को अभी बहुत दूर जाना है ?

चेतना : जी नहीं । अब इस टिकट की कोई ज़रूरत नहीं । अब हमारा नया सफर शुरू होगा । हम दोनों नई टिकट खरीदेंगे ।

इंस्पेक्टर : (नाटकीय ढंग से) बधाई, नये सफर की बधाई हो ।

चेतना : शुक्रिया ।

(इंस्पेक्टर कागज़ पर कुछ लिखता है...खामोशी)

इंस्पेक्टर : आप इस रिपोर्ट पर अपने सम्पूर्ण हस्ताक्षर कीजिये ।

(चेतना हस्ताक्षर करती है ।)

इंस्पेक्टर : (खड़ा होकर) मिस चेतना, क्या आप महसूस करतीं हैं कि आप ने मिस्टर मदन के सामान को बिना उन्हें सूचना दिये बग़ैर लेकर उन्हें परेशानी में डाला । उनकी मानहानि कराई और जैसा कि वह समझते हैं, उन के व्यक्तित्व की चोरी की ?

चेतना : यह सब जल्दी में हुआ । बहुत जल्द हुआ । इंस्पेक्टर, स्टेशन पर मुझे रिसीव करने के लिए बहुत से लोग आए थे । मैं उन को मिस्टर मदन का परिचय कैसे करा सकती थी । आपको नहीं मालूम कि वे किस हालत में थे ।......आप यकीन नहीं करेंगे । (इंस्पेक्टर

हंसता है) उफ ! मैं बहुत परेशान थी । मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था । पर मैं और कर ही क्या सकती थी ।......मैं वहां बहुत देर ठहरी परन्तु ......इस शरीफज़ादे का कहीं नाम नहीं था । ...... ओह, इंस्पेक्टर मैं बहुत परेशान हूं । मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये थ । पर... पर......पर मैं इनको यह कहना भूल गई कि मैं इन को अपने घर ले चलूंगी । इंस्पेक्टर, मैं बहुत परेशान हूं ।

इंस्पेक्टर : आई एम सारी ।.........आपको स्टेशन पर इन के लिए ठहर जाना चाहिए था ?

चेतना : मुझे मेरी सहेलियां खेंच रही थीं । सारा सामान उन्होंने कुलियों द्वारा पहले ही उठवा लिया था और स्टेशन के बाहर मोटर में रखवा दिया था । इंस्पेक्टर, यह सब बहुत जल्दी में हुआ । मैं आगे पीछे देखती जाती थी । नज़र घुमाती जाती थी पर वह कहीं नहीं मिले ।

आप का बहुत बहुत शुक्रिया इंस्पेक्टर साहब, अगर वह स्टेशन पर न उतर कर गाड़ी में ही रहते तो उन को पाना बहुत मुश्किल था । मेरे पास उन का कोई पता नहीं था ।

इंस्पेक्टर : क्यों, आपके पास मिस्टर मदन की सर्टिफिकेट्स तो थीं ?

चेतना : नहीं, हो सकता है वह सब इन के बक्स में हों । मैं वह कैसे खोल सकती थी ।

(रति-कपड़े बदल कर आता है । वह सम्पूर्ण बदल गया है ।)

रति : गुड मार्निग, इंस्पेक्टर ।

इंस्पेक्टर : (उपर से नीचे तक रति को देख कर) गुड मार्निग ! अब आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?

रति : गुड मार्निग मिस............

इंस्पेक्टर : मिस चेतना (हंसता है)

रति : इंस्पेक्टर, क्या मैं अब जा सकता हूं।

इंस्पेक्टर : ज़रूर। लेकिन यकीन मानिये मैं अब भी सचाई नहीं जान सका।

रति : (दार्शनिक की भांति) इंस्पेक्टर ! सचाई, योग्यता, और असलियत, कपड़ों में नहीं, वरदियों में नहीं, (जेब से कागज़ निकाल कर) सर्टिफिकेटों में नहीं। नम्बरों में नहीं, टिकटों में नहीं। नहीं है इन सब में......आदमी में है। और अगर आदमी में भी नहीं है तो कहीं नहीं है।

(चेतना की ओर आता है। फिर इंस्पेक्टर से)

हो सकता है कि बन्दी कैदी के कथन में सचाई हो, सत्य हो। यथार्थ हो। इंस्पेक्टर, हो सके तो उस को मुक्त कीजियेगा।

(दर्शकों से)

आप लोगों से कहता हूं कि अब आप यहां से चले जाइये। बाहर आप की नंगी रात्रि आप की प्रतीक्षा में खड़ी है। (मुड़ता हैं) आओ, चेतना चलो चलें ?

(बाहों में बाहें डालता है)

इंस्पेक्टर : तो मिस्टर मदन, अब आप कहां जा रहे हैं ?

रति : (वापस मुड़ कर) इंस्पेक्टर, मैं यहां अधूरा लाया गया था। और अब यहां से (चेतना के मुख को देखकर) पूरा हो कर जा रहा हूं। उधर (हाथ से दिखा कर) दरवाजे के बाहर मेरा उगता हुआ दिन मेरी प्रतीक्षा में खड़ा है।...मैं रोजगार की तलाश में जा रहा हूं। (दोनों चले जाते हैं।...खामोशी।)

मन्शी : साहब, क्या वह...चले गये।......यह तौलिया यहीं पर भूल गये हैं।

इंस्पेक्टर : भूल नहीं गए हैं। शायद इस को हमारी नग्नता छुपाने के लिए

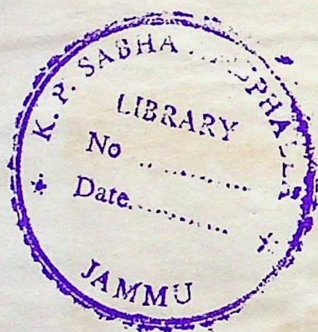
छोड़ गए हैं। इस को सम्भालने की आवश्यकता है।

(दोनों अन्दर चले जाते हैं)

धीरे धीरे-रोशनियां कम होती हैं। सींकचों से पर्दा उठता है। कैदी दो हाथ बाहर उठाये है। रोशनी हाथों पर पड़ती है।...जैसे कह रहें हों......

मुझे झूठ बोलने पर मजबूर न करो। मुझें छोड़ दो।

पर्दा गिरता है


K. P. SABHA
LIBRARY
No
Date
JAMMU